दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

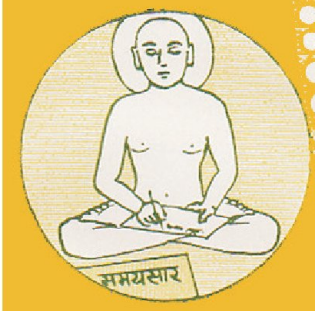

तेरी दौलत.... तेरा निधान
समेट... समेट। समेट। बाहर से दृष्टि
समेट। तेरी दौलत... तेरा निधान, तेरे ही
अंदर भरा है। अंदर में देख! वहाँ अमृतरस
झरता है-वहाँ दृष्टि लगा! —पूज्य स्वामीजी

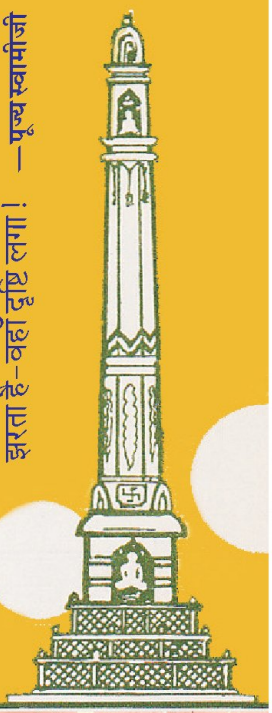

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३४ : अंक ६ [४०२] दिसम्बर, १९७८

आत्मधर्म [४०२]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा कन्नड़ — इन चार भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल
कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)
शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे
मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ अरे हम आतमराम हैं
२ जीवन ही बदल डाला
३ संपादकीय : क्षमावाणी
४ संयुक्त और असंयुक्त
[नियमसार प्रवचन]
५ मोक्षार्थी क्या करे ?
[समयसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ अभिमत
१० प्रबंध संपादक की कलम से

अनासक्त ज्ञानी

जीभ चाहे जितने सचिक्कण पदार्थों को ग्रहण करे तथापि स्वयं रूक्ष ही रहती है; उसीप्रकार ज्ञानी चाहे जैसे संयोगों के समूह में खड़ा हो तो भी रूक्ष ही-अनासक्त ही रहता है। जिसप्रकार कमल निशदिन जल में रहता है तथापि जल को स्पर्श नहीं करता; उसीप्रकार ज्ञानी संयोगों के मध्य में रहने पर भी लिप्त नहीं होता। जैसे सोना कीचड़ में पड़ा हो तो भी उसे जंग नहीं लगती; उसीप्रकार ज्ञानी संयोगों में रहता हो तो भी उसे पर में एकत्वबुद्धि नहीं होती।

— पूज्य स्वामीजी

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३४ [४०२] अंक : ६

अरे हम आतमराम हैं ।टेक॥

चेतन ज्योतिस्वरूप निरंजन, यों तो हजारों नाम हैं।
अरे हम आतमराम हैं ॥१॥

न हम गोरे श्वेत वरण के, न हम कारे राम हैं।
न हम खट्टे न हम मीठे, हम समरस परिणाम हैं॥
अरे हम आतमराम हैं ॥२॥

गंध न शब्द न हल्के भारी, न हम चिकने चाम हैं।
न हम देव पशु नर नारक, षंड पुरुष नहीं बाम हैं॥
अरे हम आतमराम हैं ॥३॥

क्षत्रिय विप्र न वैश्य न शूद्र, हम निर्भय निष्काम हैं।
काशी न मथुरा तीर्थ हमारा, हम परमानंद धाम हैं॥
अरे हम आतमराम हैं ॥४॥

न हम रागी न हम द्वेषी, दोषरहित गुणधाम हैं।
हैं परमातम सिद्ध चिदातम, हम जिनवर 'शिवराम' हैं।
अरे हम आतमराम हैं ॥५॥

जीवन ही बदल डाला

[इस स्तंभ में उन आत्मार्थियों के महत्त्वपूर्ण पत्र प्रकाशित किये जायेंगे, जिनके जीवन में आध्यात्मिक रुचि आत्मधर्म के माध्यम से जगी है।]

मैं कौन हूँ—जीवन का अंतिम लक्ष्य क्या है—
जानने की प्यास ने मुझे कहाँ-कहाँ नहीं भटकाया ?
वर्षों शिव-लिंग की अर्चना की,
फिर आर्यसमाज में आहूतियाँ दीं,
वेदों में बुद्धि का व्यायाम किया,
फिर गीता-रामायण में मन दिया,
फिर भगवान रजनीश से सन्यस्त हुआ,
नाचा-कूदा और अन्तर्जागरण की बात सुनी।
यह भटकन भी फलवती हुई और
मुमुक्षा और- और प्रखर हुई।
इसलिये इन सभी सीढ़ियों को नमन।
एक दिन 'आत्मधर्म' के शीतल वातास से परच गया और
कहान की महान नौक में जा बैठा—
'मैं कौन हूँ'—का रहस्य खुल गया।
अब 'स्व' का किनारा निकट है!
निकट है!!

— **लालाराम साहु मधुप,** एम.ए., एलएल.बी., एडवोकेट
अध्यक्ष, मुक्तिबोध साहित्य परिषद, — मंत्री मध्यप्रदेश साहू महासभा
अशोकनगर (जिला गुना-मध्यप्रदेश)

सम्पादकीय

क्षमावाणी | एक परिशीलन

दशलक्षण महापर्व के तत्काल बाद मनाया जानेवाला क्षमावाणी पर्व एक ऐसा महापर्व है, जिसमें हम वैर-भाव को छोड़कर एक-दूसरे से क्षमायाचना करते हैं; एक-दूसरे के प्रति क्षमाभाव धारण करते हैं। इसे क्षमापना भी कहा जाता है।

मनोमालिन्य धो डालने में समर्थ यह महापर्व आज मात्र शिष्टाचार बनकर रह गया है। यह बात नहीं कि हम इसे उत्साह से न मनाते हों, इससे उदास हो गये हों। आज न हम इससे उदास हुए हैं; तथा मात्र उत्साह से ही नहीं, इसे अति उत्साह से मनाते हैं।

इस अवसर पर सारे भारतवर्ष में लाखों रुपयों के बहुमूल्य कार्ड छपाये जाते हैं, उन्हें चित्रित सुंदर लिफाफों में रखकर हम इष्टमित्रों को भेजते हैं; लोगों से गले लगकर मिलते हैं; क्षमायाचना भी करते हैं; पर यह सब यंत्रवत् चलता है। हमारे चेहरे पर मुस्कान भी होती है, पर बनावटी। हमारी असलियत न मालूम कहाँ गायब हो गई है ? विमान-परिचारिकाओं की भाँति हम भी नकली मुस्कराने में ट्रेंड हो गय हैं।

हम माफी माँगते हैं; पर उनसे नहीं जिनसे माँगना चाहिये, जिनके प्रति हमने अपराध किये हैं; अनजाने में ही नहीं, जान-बूझकर; हमें पता भी है उनका, पर.....। हम क्षमावाणी कार्ड भी भेजते हैं, पर उन्हें नहीं जिन्हें भेजना चाहिये; चुन-चुनकर उन्हें भेजते हैं, जिनके प्रति न तो हमने कोई अपराध किये हैं और न जिन्होंने हमारे प्रति ही कोई अपराध किया है। आज क्षमा भी उन्हीं से माँगी जाती है, जिनसे हमारे मित्रता के संबंध हैं, जिनके प्रति अपराध-बोध भी हमें कभी नहीं हुआ है। बतायें जरा, वास्तविक शत्रुओं से कौन क्षमा माँगता है ? उन्हें कौन-कौन क्षमावाणी कार्ड डालते हैं। क्षमा करने-कराने के वास्तविक अधिकारी तो वे ही हैं। पर उन्हें कौन पूछता है ?

बड़े कहलानेवाले बहुधंधी लोगों की स्थिति तो और भी विचित्र हो गयी है। उनके यहाँ

एक लिस्ट तैयार रहती है—जिसके अनुसार शादी के निमंत्रण कार्ड भेजे जाया करते हैं; उसी लिस्ट के अनुसार कर्मचारीगण क्षमावाणी कार्ड भी भेज दिया करते हैं। भेजनेवाले को पता ही नहीं रहता कि हमने किस-किस से क्षमायाचना की है।

यही हाल उनका भी रहता है—जिनके पास वे कार्ड पहुँचते हैं। उनके कर्मचारी प्राप्त कर लेते हैं। यदि कभी फुरसत हुई तो वे भी एक निगाह डाल लेते हैं कि किन-किन के क्षमावाणी कार्ड आये हैं। उनमें क्या लिखा है, यह पढ़ने का प्रयत्न वे भी नहीं करते। करें भी क्यों? क्या कार्ड डालनेवाले को भी पता है कि उसमें क्या लिखा है? क्या उसने भी वह कार्ड पढ़ा है? लिखने की बात तो बहुत दूर।

बाजार से बना-बनाया ड्राफ्ट और छपा-छपाया कार्ड लाया गया है, पते अवश्य लिखने पड़े हैं। यदि वे भी किसी प्रकार छपे-छपाये मिल जाते होते तो उन्हें भी लिखने का कष्ट कौन करता? कदाचित् यदि उसमें प्रेस की गलती से गालियाँ छप जावे तो भी कोई चिंता की बात नहीं है। चिंता तो तब हो जब कोई उसे पढ़े। जब उसे कोई पढ़नेवाला ही नहीं—सब उसका कागज, प्रिंटिंग, गेटअप ही देखेंगे, फिर चिंता किस बात की?

करे भी क्या? आज का आदमी इतना व्यस्त हो गया है कि उसे कहाँ फुरसत है—यह सब करने की? स्वयं पत्र लिखे भी तो कितनों को? व्यवहार भी तो इतना बढ़ गया है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। बस सब-कुछ यों ही चल रहा है।

क्षमायाचना जो कि एकदम व्यक्तिगत चीज़ थी, आज बाजारू बन गयी है। क्षमायाचना या क्षमा करना एक इतना महान कार्य है, इतना पवित्र धर्म है कि जो जीव का जीवन बदल सकता है; बदल क्या सकता है, सहीरूप में क्षमा करने और क्षमा माँगनेवाले का जीवन बदल जाता है। पर न मालूम आज का यह दोपाया कैसा चिकना घड़ा हो गया है कि इस पर पानी ठहरता ही नहीं। इसकी 'कारी कामरी' पर कोई दूसरा रंग चढ़ता ही नहीं।

बड़े-बड़े महापर्व आते हैं, बड़े-बड़े महान संत आते हैं, और यों ही चले जाते हैं; उनका इस पर कोई असर नहीं पड़ता। यह बराबर अपनी जगह जमा रहता है। इसने बीसों क्षमावाणी मना डाली, फिर भी अभी बीस-बीस वर्ष पुरानी शत्रुता वैसी की वैसी कायम है, उसमें जरा भी तो हीनता नहीं आयी है।

धन्य है इसकी वीरता को। कहता है 'क्षमा वीरस्य भूषणम्'। अनेकों क्षमावाणियाँ बीत गयीं, पर इसकी वीरता नहीं बीती। अभी भी ताल ठोककर तैयार है—लड़ने के लिये, मरने के लिये। और तो और—क्षमा माँगने के मुद्दे पर भी लड़ सकता है, क्षमा माँगते-माँगते लड़ सकता है, क्षमा नहीं माँगने पर भी लड़ सकता है, बलात क्षमा माँगने को बाध्य भी कर सकता है।

इसमें न मालूम कैसा विचित्र सामर्थ्य पैदा हो गया है कि माफी माँगकर भी अकड़ा रह सकता है, माफ करके भी माफ नहीं कर सकता है। कभी-कभी तो माफी भी अकड़कर माँगता है और माफी माँग लेने का रोब भी दिखाता है।

मेरे एक सहपाठी की विचित्र आदत थी। वह बड़ी अकड़ के साथ, बड़े गौरव से माफी माँगा करता था और तत्काल फिर उसी मुद्दे पर अकड़ने लगता था। वह कहता—गलती की तो क्या हो गया? माफी भी तो माँग ली है, अब अकड़ता क्यों है?

इस तरह बात करता कि जैसे उसने माफी माँगकर बहुत बड़ा अहसान किया है। उस अहसान का आपको अहसानमन्द होना चाहिये।

जिनसे झगड़ा हुआ हो, एक तो हम लोग उन लोगों से क्षमायाचना करते ही नहीं। कदाचित् हमारे इष्टमित्र सद्भाव बनाने के लिये उनसे क्षमा माँगने की प्रेरणा देते हैं, बाध्य करते हैं, तो हम अनेक शर्तें रख देते हैं। कहते हैं—'उससे भी तो पूछो कि वह भी क्षमा माँगने या क्षमा करने को तैयार है या नहीं?'

यदि वह भी तैयार हो जाता है तो फिर इस बात पर बात अटक जाती है कि पहले क्षमा कौन माँगे? इसका भी कोई रास्ता निकाल लिया जावे तो फिर क्षमा माँगने और करने की विधि पर झगड़ा होने लगता है—क्षमा लिखित माँगी जावे या मौखिक।

यदि यह मसला भी किसी प्रकार हल कर लिया जावे तो फिर क्षमा माँगने की भाषा तय करना कोई आसान काम नहीं है। माँगनेवाला इस भाषा में क्षमा माँगेगा कि 'मैंने कोई गलती तो की नहीं है, फिर भी आप लोग नहीं मानते हैं तो मैं क्षमा माँगने को तैयार हूँ लेकिन....।'—कहकर कोई नई शर्त जोड़ देता है।

इस पर क्षमादान करनेवाला अकड़ जायेगा, कहेगा—'पहले अपराध स्वीकार करो, बाद में माफ करूँगा।'

इसप्रकर लोग कभी न किये गये अपराध के लिये क्षमा माँगेंगे और क्षमा करनेवाला अस्वीकृत अपराध को क्षमा करने के लिये तैयार न होगा। यदि कदाचित् भाषा के महापंडित मिल-जुलकर कोई ऐसा ड्राफ्ट बना लावें कि जिससे 'साँप भी मर जावे और लाठी भी न टूटे' तो फिर इस बात पर झगड़ा हो सकता है कि क्षमा आदान-प्रदान का स्थान कौनसा हो ?

इन सब बातों को निपटाकर यदि क्षमायाचना या क्षमाप्रदान-कार्यक्रम समारोह सानंद संपन्न भी हो जावे, तो भी क्या भरोसा कि यह क्षमाभाव कब तक कायम रहेगा ? कायम रहने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? जब हृदय में क्षमाभाव आया ही नहीं, सब कुछ कागज में या वाणी में ही रह गया है।

इसप्रकार की क्षमावाणी क्या निहाल करेगी ? यह भी एक विचार करने की बात है।

'क्षमा करना, क्षमा करना' रटते लोग तो पग-पग पर मिल जावेंगे; किंतु हृदय से वास्तविक क्षमायाचना करनेवाले एवं क्षमा करनेवालों के दर्शन आज दुर्लभ हो गये हैं। क्षमावाणी का सही रूप तो यह होना चाहिए कि हम अपनी गलतियों का उल्लेख करते हुए विनयपूर्वक आमने-सामने या पत्र द्वारा शुद्ध हृदय से क्षमायाचना करें एवं पवित्रभाव से दूसरों को क्षमा करें अर्थात् क्षमाभाव धारण करें।

आप सोच सकते हैं कि इस पावन अवसर पर मैं भी क्या बात ले बैठा ? पर मैं जानना चाहता हूँ कि क्या कभी आपने क्षमावाणी के बाद—जबकि आपने अनेकों को क्षमा किया है, अनेकों से क्षमा माँगी है, आत्मनिरीक्षण किया है ? यदि नहीं, तो अब करके देखिये कि क्या आपके जीवन में भी कोई अंतर आया है या जैसा का तैसा ही चल रहा है ? यदि जैसा का तैसा ही चल रहा है, तो फिर मेरी बात की सत्यता पर एक बार गंभीरता से विचार कीजिए, उसे ऐसे ही बातों में न उड़ा दीजिए। क्या मैं आशा करूँ कि आप इस ओर ध्यान देंगे ? देंगे तो कुछ लाभ उठायेंगे, अन्यथा जैसा चल रहा है, वैसा तो चलता ही रहेगा, उसमें तो कुछ आना-जाना है नहीं।

क्षमावाणी का वास्तविक भाव तो यह था कि पर्वराज पर्यूषण में दशधर्मों की आराधना से हमारा हृदय क्षमाभाव से आकंठ-आपूरित हो उठना चाहिये। और जिसप्रकार घड़ा जब आकंठ-आपूरित हो जाता है तो फिर उबलने लगता है; छलकने लगता है; उसीप्रकार जब

हमारा हृदयघट क्षमाभावादिजल से आकंठ-आपूरित हो उठे, तब वही क्षमाभाव वाणी में भी छलकने लगे, झलकने लगे; तभी वह वस्तुतः वाणी की क्षमा अर्थात् क्षमावाणी होगी। किंतु आज तो क्षमा मात्र हमारी वाणी में रह गयी, अंतर से उसका संबंध ही नहीं रहा है।

हम क्षमा-क्षमा वाणी से तो बोलते हैं, पर क्षमाभाव हमारे गले के नीचे नहीं उतरता। यही कारण है कि हमारी क्षमायाचना कृत्रिम हो गयी है, उसमें वह वास्तविकता नहीं रह गयी है—जो होनी चाहिये थी या वास्तविक क्षमाधारी के होती है।

ऊपर-ऊपर से हम बहुत मिठबोले हो गये हैं। हृदय में द्वेषभाव कायम रखकर हम छल से ऊपर-ऊपर से क्षमायाचना करने लगे हैं।

मायाचारी के क्रोध, मान वैसे प्रकट नहीं होते जैसे कि सरल स्वभावी के हो जाते हैं। प्रकट होने पर उनका बहिष्कार, परिष्कार संभव है; पर अप्रकट की कौन जाने? अतः क्षमाधारक को शांत और निरभिमानी होने के साथ सरल भी होना चाहिये।

कुटिल व्यक्ति क्रोध-मान को छिपा तो सकता है, पर क्रोध-मान का अभाव करना उसके वश की बात नहीं है। क्रोध-मान को दबाना और बात है तथा हटाना और। क्रोध-मानादि को हटाना क्षमा है, दबाना नहीं।

यहाँ आप कह सकते हैं कि क्षमा तो क्रोध के अभाव का नाम है; क्षमाधारक को निरभिमानी भी होना चाहिये, सरल भी होना चाहिये आदि शर्तें क्यों लगाते जाते हैं?

यद्यपि क्षमा क्रोध के अभाव का नाम है; तथापि क्षमावाणी का संबंध मात्र क्रोध के अभावरूप क्षमा से ही नहीं, अपितु क्रोधमानादि विकारों के अभावरूप क्षमामार्दवादि दशों धर्मों की आराधना एवं उससे उत्पन्न निर्मलता से है।

क्षमा माँगने में बाधक क्रोधकषाय नहीं, अपितु मानकषाय है। क्रोधकषाय क्षमा करने में बाधक हो सकती है, क्षमा माँगने में नहीं।

जब हम कहते हैं—

''खामेमि सव्व जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वैरं मज्झं ण केण वि॥

सब जीवों को मैं क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें। सब जीवों से मेरा मैत्रीभव रहे, किसी से भी बैरभाव न हो।''

तब हम 'मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ', कहकर क्रोध के त्याग का संकल्प करते हैं या क्रोध के त्याग की भावना भाते हैं तथा 'सब जीव मुझे क्षमा करें' कहकर मान के त्याग का संकल्प करते हैं या मान के त्याग की भावना भाते हैं। इसीप्रकार सब जीवों से मित्रता रखने की भावना मायाचार के त्यागरूप सरलता प्राप्त करने की भावना है।

इसलिए क्षमावाणी को मात्र क्रोध के त्याग तक सीमित करना उचित नहीं।

एक बात यह भी तो है कि इस दिन हम क्षमा करने के स्थान पर क्षमा माँगते अधिक हैं। भले ही उक्त छंद में 'मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ' वाक्य पहले हो, पर सामान्य व्यवहार में हम यही कहते हैं—'क्षमा करना'। यह कोई कहता दिखायी नहीं देता कि 'क्षमा किया।' इसे क्षमायाचना दिवस के रूप में ही देखा जाता है, 'क्षमा करना' दिवस के रूप में नहीं।

क्षमायाचना मानकषाय के अभाव में होनेवाली प्रवृत्ति है। अत: क्यों न इसे मार्दववाणी कहा जाये? पर सभी इसे क्षमावाणी ही कहते हैं। एक प्रश्न यह भी हो सकता है कि दशलक्षण महापर्व के बाद मनाया जानेवाला यह उत्सव प्रतिवर्ष क्षमादिवस के रूप में ही क्यों मनाया जाता है? एक वर्ष क्षमादिवस, दूसरे वर्ष मार्दवदिवस, तीसरे वर्ष आर्जवदिवस आदि के रूप में क्यों नहीं? क्योंकि धर्म तो दशों ही एक समान है। क्षमा को ही इतना अधिक महत्त्व क्यों दिया जाता है?

भाई! यह प्रश्न तो तब उठाया जा सकता है जबकि क्षमावाणी का अर्थ मात्र क्षमावाणी हो। क्षमावाणी का वास्तविक अर्थ तो क्षमादिवाणी है। क्षमा आदि दशों धर्मों की आराधना से आत्मा में उत्पन्न निर्बैरता, कोमलता, सरलता, निर्लोभता, सत्यता, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मलीनता से उत्पन्न समग्र पवित्रभाव का वाणी में प्रकटीकरण ही वास्तविक क्षमावाणी है। जब तक भूमिकानुसार दशों धर्म हमारी परिणति में नहीं प्रकटेंगे तब तक क्षमावाणी का वास्तविक लाभ हमें प्राप्त नहीं होगा।

अब रह जाती है, मात्र यह बात कि फिर इसका नाम अकेली क्षमा पर ही क्यों रखा गया है? सो इसका समाधान यह है कि क्या इतना बड़ा नाम रखने का प्रयोजन सफल होता है? क्या इतना बड़ा नाम सहज सब की जवान पर चढ़ सकता था? नहीं, बिल्कुल नहीं।

अत: जिसप्रकार अनेक भाईयों या भागीदारों का बराबर भाग रहने पर भी फर्म या

कंपनी का नाम प्रथम भाई के नाम पर रख दिया जाता है, एक भाई का नाम रहने पर भी सबके स्वामित्व में कोई अंतर नहीं पड़ता; उसीप्रकार क्षमा का नाम रहने पर क्षमावाणी में दशों धर्म समा जाते हैं।

यहाँ एक प्रश्न यह भी संभव है कि जिसके नाम की दुकान होगी, सामान्य लोग तो यही समझेंगे कि दुकान उसी की है।

यह बात ठीक है, स्थूलबुद्धि वालों को ऐसा भ्रम प्रायः हो जाता है; पर समझदार लोग सब सही ही समझते हैं। इसीकारण तो क्षमावाणी को स्थूलबुद्धिवाले मात्र क्षमावाणी ही समझ लेते हैं, क्षमादिवाणी नहीं समझ पाते। पर जब समझदार लोग समझाते हैं तो सामान्य लोगों की भी समझ में आ जाता है। इसीलिए तो इतना स्पष्टीकरण किया जा रहा है। यदि इस भ्रम की संभावना नहीं होती तो फिर इतने स्पष्टीकरण की आवश्यकता क्यों रहती ?

दुनियादारी में तो आज का आदमी बहुत चतुर हो गया है। क्या देश में जितनी भी मिल, दुकानें गाँधजी के नाम पर हैं, उन सबके मालिक गाँधीजी हैं ? नहीं, बिल्कुल नहीं, और यह बात सब अच्छी तरह समझते भी हैं। पर न मालूम आध्यात्मिक मामलों में इसप्रकार के भ्रमों में क्यों उलझ जाते हैं ? वस्तुतः बात तो यह है कि आध्यात्मिक मामलों में कोई भी व्यक्ति दिमाग पर वजन ही नहीं डालना चाहता। गहराई से सोचता ही नहीं है तो समझ में कैसे आवे ? यदि सामान्य व्यक्ति भी थोड़ा-सा भी गहराई से विचार करे तो सब समझ में आ सकता है।

[उत्तरार्द्ध अगले अंक में]

संयुक्त और असंयुक्त

परमपूज्य दिगम्बर आचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की १९वीं गाथा एवं उसमें समागत कलश नं० ३६ पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है—

दव्वत्थिएण जीवा वदिरित्ता पुव्वभणिदपज्जाया।
पज्जयणएण जीवा संजुत्ता होंति दुविहेहिं ॥१९॥

द्रव्यार्थिकनय से जीव पूर्वकथित पर्याय से व्यतिरिक्त है; पर्यायार्थिकनय से जीव उस पर्याय से संयुक्त है। इसप्रकार जीव दोनों नयों से संयुक्त है।

पहले तो कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय वगैरह कही थीं; किंतु यहाँ विभाव पर्यायों की ही अपेक्षा लेनी। पन्द्रहवीं गाथा के प्रथम पद में कही गयीं विभाव पर्यायें लेनी; परंतु द्वितीय पद में 'कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया' कहा है, वे पर्यायें न लेना।

जो विभावव्यंजनपर्यायें कही थीं, उन पर्यायों से जीव द्रव्यार्थिकनय से जुदा है। कारणशुद्धपर्याय के अतिरिक्त अन्य सभी पर्यायें पर्यायार्थिकनय का विषय है; किंतु यहाँ पर्यायार्थिकनय के विषय में मात्र विकारी व्यंजनपर्यायें ही लेना हैं; पर्यायनय से जीव के वे विकारीव्यंजनपर्यायें हैं और द्रव्यनय से जीव उन विकारीपर्यायों से रहित है।

प्रत्येक जीव को यह दो नय लागू पड़ते हैं। भगवान सर्वज्ञ के मार्ग में वस्तु का निरूपण दो नयों के आधीन है, उन दोनों नयों को यहाँ सिद्ध किया है। उनमें से त्रिकाल का आदर और वर्तमान का ज्ञान—ऐसे समझे तभी दोनों नयों का जाना कहा जाये।

त्रिकाल और वर्तमान दोनों को जाननेवाला ज्ञान त्रिकाल की ओर बढ़े बिना रहता नहीं। वर्तमान मात्र का—व्यवहार का ज्ञान तो जाननेमात्र को ही है, परंतु त्रिकाली का ज्ञान जाननेमात्र जितना ही नहीं होता; उसकी तरफ झुककर उसका आदर करे तो ही उसका ज्ञान हो। त्रिकाली के आदर बिना उसका ज्ञान होता ही नहीं; त्रिकाली को जाना वहाँ ज्ञान उसमें झुक ही जाता है,

क्योंकि वर्तमान की अपेक्षा त्रिकाली का सामर्थ्य अनंतगुना है। अत: उसको जानने पर ज्ञान का अनंतवीर्य स्वभाव की ओर झुकता ही है–इसीप्रकार दो नयों का सफलपना है।

वर्तमान जितने व्यवहार को जानने में उसके आदर की आवश्यकता नहीं, किंतु त्रिकाली निश्चय को जानने में उसका आदर भी साथ ही आ जाता है। त्रिकाली को जाने और उसका आदर न हो ऐसा बनता ही नहीं। निश्चय और व्यवहार दोनों को जाननेवाला ज्ञान निश्चय की तरफ ही ढल जाता है और तभी ज्ञान में दोनों नयों का सफलपना होता है।

निश्चय और व्यवहार दोनों को समान जाने तो समझ लो कि उस ज्ञान ने निश्चय की महिमा जानी ही नहीं—वह ज्ञान ही सच्चा नहीं। ध्रुव का ज्ञान ध्रुव की ओर ढलने पर ही होता है और तभी व्यवहार को समयमात्र का अर्थात् समयपुरता जानता है।

भगवान सर्वज्ञ ने द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दो नय कहे हैं। एकरूप ध्रुव–स्थायीद्रव्य ही जिसका विषय है, वह द्रव्यार्थिकनय है। ध्रुवद्रव्य के समक्ष देखनेवाला ज्ञान वह द्रव्यार्थिकनय है—जिस ज्ञान का हेतु, प्रयोजन, लक्ष, ध्येय द्रव्य ही है, वह द्रव्यार्थिकनय है; जो नय द्रव्य का अर्थी है—द्रव्य का ज्ञान ही जिसका प्रयोजन है, वह द्रव्यार्थिकनय है।

यहाँ द्रव्य कहने से प्रमाण के विषयरूप द्रव्य को मत समझना। यहाँ तो वर्तमान पर्याय को गौण करके त्रिकाली ध्रुवद्रव्य, वह द्रव्यार्थिकनय का विषय है।

द्रव्यार्थिकनय का विषय द्रव्य और पर्यायार्थिकनय का विषय पर्याय है, इसप्रकार दोनों नय सफल हैं। जहाँ द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य को ध्येय किया वहाँ ज्ञान उस द्रव्य की तरफ झुक गया अर्थात् उस ज्ञान में द्रव्य का ही आदर हुआ। द्रव्यार्थिकनय द्रव्य का ही अर्थी है—त्रिकालशुद्ध को जानने का ही उसका प्रयोजन है।

पर्याय को ही जो देखता है, वह पर्यायार्थिकनय है। जिस ज्ञान ने पर्याय और द्रव्य दोनों को जाना, उस ज्ञान का जोर द्रव्य के ऊपर ही जाता है। प्रयोजन तो दोनों नयों का है। परंतु एक का प्रयोजन ध्रुवद्रव्य है, और दूसरे का प्रयोजन वर्तमान पर्याय है।

जैसे दो मनुष्य आवें, उनमें एक कहे कि चावल लेने आया हूँ और दूसरा कहे कि खाली वारदाना लेने आया हूँ। उसीप्रकार यहाँ द्रव्यार्थिकनय कहता है कि मैं तो अखंड ध्रुवद्रव्य को देखने आया हूँ और पर्यायार्थिकनय कहता है कि मैं तो पर्याय को देखने आया हूँ।

दोनों नयों को जाननेवाला ज्ञान त्रिकाल ऊपर जोर देकर उसका आदर करता है। पर्याय को जानता है, किंतु उसके आश्रय से कल्याण नहीं मानता। यहाँ पर्यायार्थिकनय के विषयरूप में मात्र विकारीव्यंजनपर्यायों को ही लिया गया है।

इन दोनों नयों से वस्तु को जानना चाहिये। आत्मा की आकृति न माने अथवा त्रिकाली ध्रुवतत्त्व को न माने तो वह ज्ञान मिथ्या है। त्रिकालीध्रुव और उसकी वर्तमान पर्याय—इन दोनों को जाननेवाला ज्ञान ही प्रमाण है। एकांत एक नय को अवलंबन करनेवाला उपदेश मिथ्या है। अत: वह ग्रहणीय नहीं है। दोनों नयों का उपदेश ग्रहण करनेयोग्य है। आत्मा त्रिकाल शुद्ध है और पर्याय में विकार भी है। सिद्ध जीवों के भी पहले संसारदशा में विकारी पर्याय थी। इस भाँति दोनों नयों को जानना चाहिये।

'सत्ताग्राहक (द्रव्य की सत्ता को ही ग्रहण करनेवाली) शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से पूर्वोक्त व्यंजनपर्यायों से मुक्त तथा अमुक्त (सिद्ध तथा संसारी) समस्त जीवराशि सर्वथा व्यतरिक्त ही है।' शुद्धद्रव्य की सत्ता को ही ग्रहण करनेवाले ऐसे शुद्धद्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा तो सिद्ध या संसारी समस्त जीव विकारीव्यंजनपर्यायों से रहित ही हैं।

आत्मा के प्रदेशत्वगुण की जिस पर्याय में कर्म का निमित्त है, उसको विभावव्यंजनपर्याय कहते हैं। यह पर्याय संसारदशा में है, वह पर्यायदृष्टि से है; किंतु शुद्धद्रव्यार्थिकदृष्टि से तो किसी जीव के वह पर्याय नहीं है। पर्याय के दो भेद हैं। अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय। प्रदेशत्वगुण की पर्याय वह व्यंजनपर्याय है। उन पर्यायों के भी दो-दो प्रकार हैं। स्वभावअर्थपर्याय और विभावअर्थपर्याय; स्वभावव्यंजनपर्याय और विभावव्यंजनपर्याय। उनमें से यहाँ विभावव्यंजनपर्याय की बात है।

अरिहंत के असंख्य प्रदेशों का आकार समय-समय पलटे तथापि सर्वज्ञदशा भी टिके; यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्य शासन में है नहीं। आत्मा का आकार और उसके भी दो प्रकार हैं। आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, उनके आकार में स्वभाव और विकार ऐसे दो भेद हैं और उनमें प्रतिसमय उत्पाद-व्ययरूप परिणाम हैं। यह बात सर्वज्ञ के अलावा दूसरा नहीं जान सकता। 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया' (शुद्धनय से सब जीव वास्तव में शुद्ध हैं) ऐसा शास्त्र वचन होने से प्रत्येक जीव शुद्ध है। शुद्धदृष्टि से विभावव्यंजनपर्याय रहित है।

विभावव्यंजनपर्यायार्थिकनय से तो सर्व जीव (पूर्वोक्त व्यंजनपर्यायों से) संयुक्त हैं। उसमें अपवाद इतना है कि 'सिद्ध जीवों के अर्थपर्यायों सहित परिणति है, परंतु व्यंजनपर्यायों सहित परिणति नहीं है'—सिद्ध जीवों के व्यंजनपर्यायें गिनी ही नहीं। यद्यपि उनमें स्वभाव-व्यंजनपर्यायें तो हैं, परंतु उनको स्वभावअर्थपर्यायें ही गिनी हैं, क्योंकि यहाँ विभाव-व्यंजनपर्यायों की ही बात लेनी है। अत: सिद्धों के विभावव्यंजनपर्यायों का अभाव कहा है।

सर्वज्ञ का दो नयों वाला उपदेश है। दो नयों का अर्थ क्या?

(१) त्रिकाल शुद्ध आत्मा को देखनेवाला नय तो द्रव्यार्थिकनय है और (२) क्षणिक विकारीव्यंजनपर्याय को देखनेवाला पर्यायार्थिकनय है।

आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, उन सब की आकृति भी होती है और उनमें प्रत्येक क्षण विभावव्यंजनपर्याय होती है, वह पर्यायनय का विषय है। वस्तुस्वरूप की दृष्टि से देखने पर आत्मा में विकारीव्यंजनपर्याय नहीं है। यदि वर्तमान विकारी आकृति जितना ही माने और त्रिकालशुद्धचैतन्य को न माने तो वह एकांत व्यवहारमूढ़ मिथ्यादृष्टि है। उसीप्रकार त्रिकाल शुद्ध आत्मा है ऐसा कहे और वर्तमान विकारी आकृति है, उसे न माने तो वह भी उसीप्रकार एकांतवादी मिथ्यादृष्टि है।

चैतन्य की पर्याय में जड़ की पर्याय का अत्यंत अभाव है। आत्मा की पर्याय में विकार होता है, वह भी एकसमय का विकारी अंश है, वह भी पर्यायनय का विषय है, परंतु यहाँ तो मात्र विभावव्यंजनपर्याय की बात ली है।

विकारीव्यंजनपर्याय सिद्धों में नहीं है, उनमें तो असंख्य प्रदेशी अनंतगुणों के पिंड की निर्विकारी परिणति ही हो रही है, वह सदा निरंजन हैं, इसलिये उनमें विकारीव्यंजनपर्याय नहीं कही गई; स्वभावव्यंजनपर्याय तो है, सादि-अनंत सदृश-आकृतिरूप परिणमन तो है, किंतु विभावव्यंजनपर्याय नहीं है।

सूत्र में तो ऐसा कहा है कि सर्व जीवों के दो नय हैं अर्थात् विभावव्यंजनपर्याय भी सबके हैं। इसके आधार पर निम्न प्रश्न उपस्थित होता है:—

प्रश्न-सिद्धजीव सदा निरंजन हैं; तो सभी जीव द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक दोनों नयों से संयुक्त हैं (अर्थात् सभी जीवों पर दोनों नय लागू होते हैं) ऐसा सूत्रार्थ (गाथा का अर्थ)

व्यर्थ हो जाता है। पर्यायनय का विषय विभावव्यंजनपर्याय कहा, वह पर्याय सिद्धों में है नहीं, ऐसी स्थिति में सिद्ध भगवान को दोनों नयें किसप्रकार लागू पड़ेंगे ? और यदि दोनों नयें सिद्धों पर लागू नहीं होते तो फिर सूत्र का अर्थ ही व्यर्थ हो जाता है।

समाधान–व्यर्थ नहीं हो जाता, कारण कि निगम अर्थात् विकल्प; उसमें जो हो वह नैगम। जो भूत की पर्याय को वर्तमानवत् संकल्पित करे अथवा कहे, भविष्यकाल की पर्याय को वर्तमानवत् संकल्पित करे अथवा कहे, अथवा कथंचित् निष्पन्नतायुक्त और कथंचित् अनिष्पन्नतायुक्त वर्तमान पर्याय को सर्वनिष्पन्नवत् संकल्पित करे अथवा कहे; उस ज्ञान को अथवा वचन को नैगमनय कहते हैं।

सिद्ध भगवान के अर्थपर्याय तथा व्यंजनपर्याय दोनों ही स्वाभाविक हैं, वर्तमान में उनके विभावपर्याय नहीं है; किंतु उस सिद्धात्मा के भी पहले विभावव्यंजनपर्याय थी, अतः भूतनैगमनय से सिद्ध के भी पर्यायार्थिकनय लागू पड़ता है। पूर्व की विभावव्यंजनपर्याय का आरोप करके सिद्ध के वर्तमान में विभावव्यंजनपर्याय का आरोप करने में आता है। वर्तमान तो सर्व प्रकार से निर्मल ही है, परंतु पहले उसमें अशुद्धता थी, विकार वह मेरा कर्तव्य—ऐसा पहले अज्ञानदशा में मानता था, पश्चात् आत्मा का भान करके, उसमें एकाग्र होकर शुद्ध सिद्धदशा प्रगट हुई, तब वर्तमान में उसमें विभाव नहीं है; किंतु पूर्व की अशुद्धता और विकारीव्यंजनपर्याय का भूतनैगमनय से कर्ता कहा जाता है। इसप्रकार सिद्ध के भी व्यवहार लागू पड़ता है। पूर्वकाल में वे भगवंत संसारी थे, अशुद्ध थे, उदयभाववाले थे; इसलिये भूतनैगमनय से उन्हें अशुद्ध कहा जाता है।

आत्मा की अशुद्धता ही संसार है, आत्मा का संसार कहीं बाहर में नहीं है। पुण्य-पाप से मुझे लाभ होगा, शरीर की क्रिया मैं करता हूँ; ऐसी विपरीत मान्यता वह मिथ्यात्वरूप संसार है। जब वह मिथ्या मान्यता टलकर चैतन्य का भान हुआ तो मिथ्यात्व का संसार नष्ट हो गया; पश्चात् जो अल्प राग-द्वेष रहता है, वह अस्थिरता का अल्प संसार है; उसका भी स्वरूप में लीनता के द्वारा नाश करके सिद्ध भगवान शुद्ध हुए—उन्हें भी पूर्व की अशुद्धता का आरोप करके पर्यायनय से अशुद्ध कहा जाता है। इसप्रकार द्रव्यार्थिकनय से सभी जीव शुद्ध हैं तथा पर्यायार्थिकनय से अशुद्ध हैं। इसप्रकार सभी जीवों को दोनों नय लागू पड़ते हैं। उभयनय के बल से सर्व जीवराशि शुद्ध और अशुद्ध है।

पहले अकेली विभावव्यंजनपर्याय को पर्यायनय में परिगणित किया था और यहाँ अशुद्धता को भी साथ ले लिया है। जिसप्रकार भगवान को वर्तमान शुद्धता होने पर भी भूतनैगमनय से अशुद्ध भी कहा जाता है; उसीप्रकार निगोद का जो जीव वहाँ से निकलकर, आत्मभान करके मुक्त होनेवाला हो, वह जीव भविष्य में शुद्ध होनेवाला है, उसका आरोप करके वर्तमान में भी उसको शुद्ध कह सकते हैं। वर्तमान में विकार होने पर भी भविष्य की शुद्धता का वर्तमान में आरोप करके उसको भी शुद्ध कह सकते हैं।

स्वभावदृष्टि से तो सभी जीव शुद्ध ही हैं और ऐसी दृष्टि से अपनी अशुद्धपर्याय टलकर आंशिक शुद्धदशा प्रकटी तथा पूर्ण शुद्धता प्रकट होनेवाली है। वहाँ वर्तमान अल्प विकार है, उसका भावी नैगमनय से निषेध करके कहते हैं कि मैं शुद्ध हूँ और अपनी दृष्टि के बल से कहते हैं कि निगोद के जो जीव भविष्य में शुद्ध होनेवाले हैं, वे भावी नैगमनय से वर्तमान में भी शुद्ध हैं—ऐसा कहा जाता है। वर्तमान में विकार भाव का परिणमन होने पर भी वे जीव भावी नैगमनय से अभी शुद्ध हैं। और सिद्ध भगवंतों के वर्तमान में विकार का परिणमन न होने पर भी भूतनैगमनय के बल से उनके वर्तमान अशुद्धता भी कही जाती है।

प्रश्न : सिद्ध की आत्मा को पूर्व की अशुद्धपर्यायपने देखने का फल क्या ?

उत्तर : सिद्ध के पहले निगोदपर्याय थी—ऐसा जिसने देखा उसने त्रिकाली द्रव्य को देखा। सिद्ध और निगोद ऐसी सभी पर्यायों को लक्ष में लेने पर द्रव्यदृष्टि हो जाती है—वही उसका फल है।

विकार एकसमय का है, वह स्वभाव में नहीं है; इसप्रकार दोनों को जानने का तात्पर्य तो द्रव्यदृष्टि है। त्रिकाली स्वभाव और क्षणिकविकार—इन दोनों को जहाँ जाना, वहाँ स्वभाव की तरफ ढले बिना रहे नहीं।

पर्यायार्थिकनय विकार को भी जानता है; किंतु द्रव्यदृष्टि में विकार है ही नहीं। वहाँ तो एक शुद्ध चिदानंद आत्मा ही है। जिसने ऐसे भान से अपनी पर्याय में श्रद्धा-ज्ञान की शुद्धता की है तथा भविष्य में पूर्ण शुद्धता करनेवाला है, वह कहता है कि मैं शुद्ध हूँ, द्रव्य से भी शुद्ध और पर्याय से भी शुद्ध-ऐसा भावी नैगमनय से वह कहता है। और निगोद का जो आत्मा भविष्य में मुक्ति पानेवाला है, वह अभी मुक्त है—ऐसा कहकर त्रिकालीद्रव्य को देखता है। उसीप्रकार सिद्ध का आत्मा पहले संसारपर्याय में था—ऐसे उस आत्मा को भी त्रिकालीपने लक्ष में लेता

है। इसप्रकार दोनों नयों से सबको देखने का कहा—इन नयों के फल में वीतरागता आती है।

नय किसको होते हैं ? सम्यग्ज्ञान हुआ हो उसी को नय होते हैं। नय सम्यक्श्रुतज्ञान में ही होते हैं। जिसे त्रिकालीद्रव्य और पर्याय दोनों का ज्ञान हुआ हो उसी को नय होते हैं। इन नयों को जानने का फल वीतरागता है। त्रिकाल शुद्ध का आदर करके क्षणिकविकार के प्रति उदासीन होना यही दो नयों का फल है।

इसीप्रकार आचार्य अमृतचंद्रसूरि ने श्री समयसार की आत्मख्याति टीका में चौथे श्लोक में कहा है:—

दोनों नयों के विरोध को नष्ट करनेवाले स्यात् पद से अंकित जिनवचन में जो पुरुष रमते हैं, वे स्वयमेव मोह का वमन कर डालते हैं तथा अनूतन (अनादि) और कुनय के पक्ष से नहीं खंडित होनेवाली उत्तम परमज्योति को-समयसार को शीघ्र देखते ही हैं।

निश्चयनय कहता है कि मैं त्रिकालशुद्ध हूँ। व्यवहारनय कहता है कि वर्तमान में विकार भी है। विकारपने विकार है, और त्रिकाली स्वभावपने विकार नहीं है; त्रिकाली स्वभावपने स्वभाव है, और विकारपने स्वभाव नहीं है—इसप्रकार अनेकांत है। निश्चयनय कहता है कि अशुद्धता नहीं है, व्यवहारनय कहता है कि अशुद्धता है; परंतु जिनवचन उनका विरोध दूर कर देते हैं। यथा, निश्चयनय से स्वभाव में त्रिकाल शुद्धता है; पर्यायनय से एक समय की अशुद्धता भी है, किंतु वह अशुद्धता मेरे स्वभाव में नहीं है।

निमित्त है, व्यवहार है; किंतु उनके आश्रय मेरा ज्ञान नहीं है। व्यवहार करते-करते निश्चय हो जायेगा—ऐसा माने तो वह एकांत है। जो जीव शुद्धस्वभाव और विकार—दोनों को जानकर स्वभाव की तरफ ढ़लते हैं, वे ही जिनवचन में रमण करते हैं ऐसा कहा गया है और वे जीव ही स्वयमेव मोह का वमन कर डालते हैं। उनके मोह का उत्पाद ही नहीं होता, इसलिये मोह का वमन कर डाला—ऐसा कहा जाता है।

निश्चय के आश्रय से भी धर्म होगा और व्यवहार के आश्रय से भी धर्म होगा—ऐसा यदि माने तो उसने दोनों नयों को माना नहीं, उसके तो एकांत हो जाता है। पुण्य को पुण्य रूप से ही स्थापित रखे और उससे धर्म न मनावे तभी उसके दोनों नय रह सकते हैं।

त्रिकालस्वभाव शुद्ध है तथा क्षणिकपर्याय में विकार है—ऐसा दोनों नयों से जानकर

जो शुद्धचैतन्यस्वभाव की ओर ढलता है, वह अंदर में अनूतन अर्थात् अनादि और कुनय के पक्ष से खंडित नहीं होनेवाली उत्तम परमज्योति को शीघ्र देखता ही है।

पुनः इस जीवाधिकार की अंतिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं:—

अथ नययुगयुक्तिं लंघयंतो न संतः
परमनिजपदाब्जद्वन्द्वमत्तद्विरेफाः।
सपदि समयसारं ते ध्रुवं प्राप्नुवन्ति
क्षितिषु परमतोक्तेः किं फलं सज्जनानाम्॥३६॥

जो दो नयों के संबंध का उल्लंघन न करते हुए परमजिन के पाद-पंकज युगल में मत्त हुए भ्रमर के समान हैं—ऐसे जो सत्पुरुष वे शीघ्र समयसार को अवश्य प्राप्त करते हैं। पृथ्वी पर पर-मत के कथन से सज्जनों को क्या फल है?

विभावव्यंजनपर्याय की जो बात कही थी वह बात सर्वज्ञ के मार्ग के अतिरिक्त अन्यत्र है नहीं। आत्मा के असंख्य प्रदेश और उनकी विभाव आकृति—ऐसी बात वीतराग शासन के अलावा दूसरी जगह हो सकती नहीं। अतः टीकाकार कहते हैं कि अहो! सर्वज्ञ के शासन में सर्व पूर्णता है, तो फिर पृथ्वी पर दूसरे (पर-मत को) कथनों से सज्जनों को क्या लाभ है।

एक-एक समय की विभावपर्याय भी स्वतंत्र है, उसके बदले जो उसे पराधीन मनावे वह भी आत्मा की स्वाधीनता का लुटेरा है। शरीर के कारण आत्मा का वैसा आकार हो जाता है—ऐसा नहीं है, किंतु आत्मा की अपनी विभावव्यंजनपर्याय की वैसी योग्यता है। अपनी पर्याय पर के कारण माने तो उसके तो पर्यायार्थिकनय भी रहता नहीं।

वीतराग के अनुयायी दो नयों के संबंध को तोड़ते नहीं हैं; अर्थात् व्यवहार को व्यवहाररूप से जानते हैं और निश्चय को निश्चयरूप से। व्यवहार से निश्चय होता है ऐसा यदि माने तो उसने दोनों ही नयों को नहीं माना। जिनमत का अनुयायी दोनों नयों को उल्लंघता नहीं है, वह जिनेन्द्रदेव के चरणकमल में मत्त हुए भ्रमर के समान है। अर्थात् वीतराग देव ने क्या कहा है उसका पराग चूसने में जो लीन है—ऐसा सत्पुरुष शीघ्र शुद्धात्मा को प्राप्त हो जाता है। जो वीतराग मार्ग का उल्लंघन करता है, वह संसार का उल्लंघन नहीं कर सकता।

जिनेन्द्रकथित दो नयों को जानकर सत्पुरुष शीघ्र ही शुद्धात्मा को अवश्य प्राप्त करते हैं। तब फिर ऐसे सर्वज्ञदेव के शासन के अलावा पृथ्वी के ऊपर अन्य मिथ्यामतों के कथन से सज्जनों को क्या फल है ? अर्थात् उनसे कुछ भी लाभ नहीं।

जगत में अनेक अभिप्राय चलते हैं, वे किसी के द्वारा टाले नहीं जा सकते, स्वयं ही उनसे उदास होकर अपने स्वरूप की संभाल करे तो स्वयं शुद्धात्मा को पा जाये। वीतराग के द्वारा कहा हुआ दो नयों का कथन जगत में अन्यत्र कहीं है ही नहीं; इसलिये दूसरे किसी के साथ जैनशासन का सुमेल किंचित् भी बन जाये-ऐसा नहीं है।

इसप्रकार सुकविजनरूपी कमलों के लिये जो सूर्य के समान हैं और पाँच इंद्रियों के फलावरहित देहमात्र जिनका परिग्रह था, ऐसे ही पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्री भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रंथ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव विरचित तात्पर्यवृत्ति नाम टीका में) जीव अधिकार नाम का प्रथम श्रुतस्कंध समाप्त हुआ।

आवश्यकता है—न्याय विषय के एक ठोस विद्वान की जो छात्रों को न्याय प्रथमा, न्याय मध्यमा एवं न्यायतीर्थ के विषयों को पढ़ा सके। इस विषय के विद्वान बंधुओं में से यदि कोई पूरा समय न दे सकें तथा वर्ष में एक-दो माह का ही समय दे सकें तो उनकी सेवाएँ भी हम प्राप्त करना चाहते हैं।

— श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय, ए-४, बापूनगर, जयपुर-४

आवश्यकता है—स्थानीय रात्रि जैन पाठशाला के लिये एक विद्वान की जो बालकों को छहढाला, मोक्षशास्त्र तथा पंडित टोडरमल स्मारक टस्ट, जयपुर द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम का अध्ययन करा सके। वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर द्वारा प्रशिक्षित अध्यापक को प्राथमिकता दी जायेगी। वेतन योग्यतानुसार। आवास, बिजली तथा पानी की नि:शुल्क सुविधा। **—लखमीचंद जैन द्वारा कमल कटपीसट सेंटर, बजरिया, बीना (म०प्र०)**

मोक्षार्थी क्या करे ?

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की १७वीं एवं १८वीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथाएँ इसप्रकार हैं:—

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण॥१७॥
एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण॥१८॥

जैसे कोई धन का अर्थी पुरुष राजा को जानकर श्रद्धा करता है, और फिर उसका प्रयत्नपूर्वक अनुचरण करता है अर्थात् उसकी सुंदर रीति से सेवा करता है।

उसीप्रकार मोक्ष के इच्छुक को जीवरूपी राजा को जानना चाहिये और फिर उसीप्रकार उसका श्रद्धान करना चाहिये, और तत्पश्चात् उसी का अनुचरण करना चाहिये अर्थात् अनुभव के द्वारा तन्मय हो जाना चाहिये।

अनादि से आज तक जिस साध्य की सिद्धि नहीं हुई, उस साध्य की सिद्धि की विधि आचार्यदेव उदाहरणपूर्वक समझाते हैं।

जैसे कोई धन का अर्थी पुरुष छत्र, चँवर आदि विभूति चिह्नों द्वारा सामान्य प्रजाजनों से राजा की भिन्न पहचान करता है कि यह राजा है और फिर उसकी श्रद्धा करता है कि यह राजा ही है, इसकी सेवा से अवश्य धन की प्राप्ति होगी, और फिर उसकी सेवा करता है। उसीप्रकार जो परिपूर्ण अखंड, आनंदरूप मोक्षदशा प्रगट करना चाहता है; जिसे पुण्य, राग, यश, लक्ष्मी आदि की अभिलाषा नहीं है; जो अनंत दु:खों का क्षय करना चाहता है, एकमात्र पूर्णानंद की प्राप्ति और राग-द्वेष के दु:ख के व्यय का अर्थी है; ऐसे मोक्षार्थी जीव को सर्वप्रथम आत्मा को जानना चाहिये।

आचार्यदेव ने यहाँ सर्वप्रथम आत्मा को जानने पर भार दिया है। बहुत से लोग प्रश्न करते हैं कि पहले क्या करना चाहिये? वही यहाँ कहा है कि अनंतगुणों की संपदा से शोभित प्रभु को ज्ञानानंद के वेदनरूप स्वसंवेदनज्ञान से जानना चाहिये।

देखो! मोक्षार्थी को मात्र आत्मा जानना चाहिये—ऐसा कहा है। नवतत्त्व, देव, गुरु, धर्म अथव शास्त्रों को जानने के लिये नहीं कहा। तेरहवीं गाथा में प्रमाण, नय और निक्षेप से नवतत्त्व का निर्णय करना अभूतार्थ कहा है तथा यहाँ तो सीधे मात्र आत्मा को जानने की प्रेरणा दी है।

जिसे मात्र मोक्ष का ही प्रयोजन है—ऐसे जीव को सर्वप्रथम जिसका मोक्ष करना है, उसे जानना चाहिये। जैसे—राजा छत्र-चँवरादि से सुशोभित होता है; उसीप्रकार जीवरूपी राजा भी अपरिमित ज्ञान-आनंद-शांति आदि अनंत शक्तियों से सुशोभित होता है। राग अथवा निमित्त से आत्मा की शोभा नहीं होती। परिपूर्ण अतीन्द्रिय आनंद का लाभ होना ही मोक्ष है। ऐसे मोक्ष के अर्थी पुरुष को सर्वप्रथम निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान से आत्मा को जानकर उसकी प्रतीति करके उसका ही अवलंबन लेकर उसमें एकाग्र होना चाहिये।

यद्यपि तत्त्वार्थसूत्र में 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' कहा है, तथापि यहाँ आत्मा को जानकर उसकी श्रद्धा करने की बात कही है। क्योंकि जो चीज़ जानने में ही न आये उसकी श्रद्धा कैसे हो सकती है? ज्ञान की पर्याय में अखंडवस्तुरूप ज्ञेय का ज्ञान हुए बिना-भाव भासित हुए बिना वस्तु की श्रद्धा नहीं हो सकती। ज्ञान में परिपूर्ण शुद्ध चिदानंद प्रभु का भान होने पर 'यह है' ऐसी श्रद्धा होती है; क्योंकि श्रद्धा का प्रतीतिभाव तो स्वयं अपने को भी नहीं जानता और पूर्ण वस्तु को भी नहीं जानता। जाननेवाली पर्याय तो ज्ञान की है; जब वह पूर्ण शुद्धता को जानती है, तब 'यह आत्मा पूर्ण शुद्ध है' ऐसी प्रतीति होती है।

आत्मा की प्रतीति करने पर 'मेरा मोक्ष होगा या नहीं?' ऐसी शंका नहीं रहती। जैसे—राजा की सेवा करे और धनवान न हो—ऐसा नहीं होता; उसीप्रकार आत्मा की प्रतीति करके उसकी सेवा करे तो मोक्ष हुए बिना नहीं रहता। यदि मोक्ष होने में शंका रहे तो उसने आत्मा की प्रतीति ही नहीं की।

यहाँ ज्ञानपूर्वक प्रतीति करना कहा है। ज्ञान से आशय सामान्य क्षयोपशमरूप ज्ञान अर्थात् मतिज्ञान की धारणारूप ज्ञान से नहीं है; परंतु अंतर में झुके हुए स्वानुभूतिरूप ज्ञान से है। परिपूर्ण निरावरण शुद्ध ध्रुव नित्यानंद एकरूप वस्तु की ओर झुकने से ज्ञान की पर्याय में वस्तु

का प्रत्यक्ष प्रतिभास होता है और ऐसे स्वसंवेदनज्ञान के साथ ही आत्मा की निर्विकल्प श्रद्धा होती है। सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन दोनों अविनाभावी हैं।

सर्वप्रथम अपनी ज्ञान-पर्याय में आत्मा को ज्ञेय बनाना चाहिये। अनंत बार बाह्य व्रतादि धारण किये; परंतु जाननेवाले को नहीं जाना, परंतु जाननेवाले ने पर को ही जाना। इसलिये यहाँ सर्वप्रथम आत्मा को जानने के लिये कहा है। दया-दान-व्रत-तप आदि अनंत बार किये परंतु लेश-मात्र भी सुख प्राप्त नहीं हुआ।

भाई! यह तेरे हित की बात है। महँगी लगे, कठिन लगे, परंतु सत्य तो यही है। जिसे सत्य सुनने को भी नहीं मिला, वह सत्य का अनुसंधान और आचरण कैसे करेगा? तेरी चीज़ है... है... है—उसी को जानना है, इसलिये अशक्य नहीं है। इसलिये धीरज से आत्मा को जान। जन्म-मरण का अंत लाना धीर-वीर का काम है। धी=बुद्धि अर्थात् ज्ञान की पर्याय, र=फैलती हुई। अर्थात् वर्तमान ज्ञानपर्याय स्वतरफ फैले, वह धीर है। इसीप्रकार वी=विशेषरूप प्रयत्न अर्थात् अंतर्मुख पुरुषार्थ होना, यही वीरता है। चार गति में भ्रमण जिसका फल हो ऐसे पुण्य-पापरूप परिणामों की रचना वीरता नहीं है, वह तो नपुंसकता है। इसलिये सर्वप्रथम चिदानंद महाप्रभु परमात्मस्वरूप आत्मा को जानकर उसकी श्रद्धा करनी चाहिये कि इस आत्मा के अनुसरण से, इसकी सेवा से, इसमें रमण करने से अवश्य ही कर्मों से छूटा जा सकेगा।

सर्वप्रथम ज्ञान में पूर्णानंदस्वरूप आत्मा को जानकर उसकी श्रद्धा करना चाहिये। यहाँ उसकी श्रद्धा करना चाहिये से आशय—जाननेवाली पर्याय की श्रद्धा करना चाहिये—ऐसा नहीं है; बल्कि स्वसंवेदन से ज्ञात स्वयंभू भगवान आत्मा की श्रद्धा करना चाहिये—ऐसा आशय है।

जैसे कोयला पकड़नेवाली सन्सी से मोती नहीं पकड़ा जाता, सोने की बारीक सन्सी (संडासी) से मोती पकड़ा जाता है; उसीप्रकार शुभाशुभ स्थूल उपयोग से आत्मा का ज्ञान नहीं होता, अंतर्मुख सूक्ष्म उपयोग से आत्मा ज्ञात होता है। इसप्रकार अंतर्मुख उपयोग द्वारा आत्मा को जानकर उसकी श्रद्धा करना चाहिये कि यह आत्मा है, इसके आचरण अर्थात् एकाग्रता से कर्मों से छूटा जा सकेगा। व्यवहाररत्नत्रय द्वारा कर्मों से छूटा जा सकेगा, ऐसा नहीं है।

आत्माचरण ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा में लीनतारूप है। आनंदकंद स्वरूप में रमना,

अतीन्द्रिय आनंद का विशेष भोजन करना ही आत्माचरण है, इसी के द्वारा कर्मों से छूटा जा सकेगा। 'कर्म से छूटने का यह मार्ग है'—पहले ऐसा ज्ञान तो कर, ख्याल में तो ले, थोड़ा ही सही; परंतु सत्य तो समझ।

अतीन्द्रिय आनंदसागर भगवान में लीन होना ही साध्य है। शुद्ध आत्मा के ज्ञान-श्रद्धान-आचरणरूप निश्चयरत्नत्रय से ही मोक्षरूपी साध्य की सिद्धि होती है, अन्य प्रकार अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय से साध्य सिद्धि नहीं होती; ऐसा अनेकांत है। निश्चयरत्नत्रय से भी मोक्ष होता है और व्यवहाररत्नत्रय से भी मोक्ष होता है—ऐसा अनेकांत का स्वरूप नहीं है।

निष्कर्मअवस्थारूप अभेद शुद्धस्वरूपरूपी साध्य की इसीप्रकार उपपत्ति है, अन्यथा अनुपपत्ति है—ऐसा कहकर अत्यंत स्पष्टता कर दी है। धर्मी को अंतर में पूर्ण एकाग्रता न होने से व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प आता अवश्य है, परंतु वह बन्ध का ही कारण है। इससे स्वर्गादि की प्राप्ति होगी, परंतु मुक्ति प्राप्त नहीं होगी।

इसप्रकार सामान्य बात कहकर अब आत्मप्राप्ति की विधि विशेषरूप से समझाते हैं।

जब आत्मा को, अनुभव में आने पर अनेक पर्यायरूप भेदभावों के साथ मिश्रितता होने पर भी सर्वप्रकार से भेदज्ञान में प्रवीणता से 'जो यह अनुभूति है सो ही मैं हूँ' ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ, इस आत्मा को जैसा जाना है वैसा ही है इसप्रकार की प्रतीति जिसका लक्षण है, ऐसा श्रद्धान उदित होता है, तब समस्त अन्य भावों का भेद होने से निःशंक स्थिर होने में समर्थ होने से आत्मा का आचरण उदय होता हुआ आत्मा को साधता है। इसप्रकार साध्य आत्मा की सिद्धि की उपपत्ति है।

इस जीव को अनादिकाल से पुण्य-पाप का (आत्मा का अनेक पर्यायों के साथ) मिश्रित अनुभव हो रहा है अर्थात् भगवान आत्मा और राग की विकल्पवृत्ति—इन दोनों का मिश्रित अनुभव हो रहा है। मिश्रित अर्थात् थोड़ा राग का अनुभव और थोड़ा आनंद का अनुभव—ऐसा नहीं; परंतु अभेद एकस्वरूप होते हुए भी उसकी पर्याय में असंख्य प्रकार के पुण्य-पाप भावों का अनुभव होता है; इसलिये पर्याय में अनादि से अतीन्द्रिय आनंद का अभाव है। आनंद का नाथ भगवान आत्मा मौजूद होते हुए भी अज्ञानी पर्याय में रागादि का मिश्रित अनुभव करता है।

वस्तु तो अनंतगुणों का अखंड पिंडरूप है; परंतु मात्र वर्तमान अवस्था में रुक जाने से

एकरूप स्वभावभाव और रागभाव का मिश्रित वेदन होता है। क्षणिक राग को अपना स्वरूप मानना मिथ्यादृष्टि है, स्वरूप की भ्रांति है। जहाँ गुण है, वहीं उसकी विपरीत दशारूप भूल और विकार हो सकता है। तथा जहाँ भूल और विकार है वहीं उसे दूर करनेवाला अविकार स्वभाव भरा पड़ा है। नित्य स्वभाव एवं क्षणिक विकार में भेदज्ञान की प्रवीणता से आत्मज्ञान प्रगट होता है। रागरूप दशा की दिशा पर-तरफ है और ज्ञानरूप दशा की दिशा स्व-तरफ है—इसप्रकार ज्ञान और राग के बीच प्रज्ञा-छैनी पटकने से दोनों की भिन्नता का अनुभव हो सकता है।

उपर्युक्त भेदज्ञान की प्रवीणता से 'यह अनुभूति है वही मैं हूँ, व्यवहाररत्नत्रय का राग मैं नहीं हूँ'—ऐसा आत्मज्ञान उदित होता है। ज्ञानलक्षण से लक्षित चैतन्यस्वभाव का अनुभव होते ही सम्यग्ज्ञान होता है।

मैं रागरूप नहीं हूँ—ऐसा न कहकर मैं अनुभूतिस्वरूप हूँ—ऐसा कहा, क्योंकि अनुभव होते ही राग तो भिन्न पड़ा रह जाता है। इसलिये राग की ओर से मैं रागरूप नहीं—ऐसा न कहकर जो अनुभूति हुई वही मैं हूँ—इसप्रकार अनुभूति की ओर से बात की है।

भाई! एक बार सुन तो सही। यह मनुष्य भव तो भव का अभाव करने के लिये मिला है, पैसा कमाने के लिये यह मनुष्य भव नहीं मिला। इसलिये मृत्यु के पूर्व यह आत्मकल्याण का कार्य कर ले। अनंत काल बीत गया, परंतु यह जन्म-मरण की बेड़ी नहीं टूटी। इसलिये यहाँ जन्म-मरण की बेड़ी तोड़ने की विधि बताते हैं।

पर्याय में राग-द्वेषादि अनेक प्रकार के भावों के साथ मिश्रितपना होने पर भी ज्ञानी जीव भेद-ज्ञान की प्रवीणता से जान लेता है कि वर्तमान ज्ञान में ज्ञात होनेवाले रागादि भाव मेरे ज्ञान से भिन्न हैं। मेरे ज्ञान का राग के साथ एकत्व नहीं है, अपितु मैं तो ज्ञान की अनुभूतिस्वरूप हूँ—इसप्रकार ज्ञान और आत्मा के एकत्व का अनुभव करने से आत्मज्ञान उदित होता है।

आत्मज्ञान अर्थात् पर्याय का अथवा भेद का ज्ञान नहीं, परंतु ध्रुव चैतन्यस्वभावी आत्मा का ज्ञान ही आत्मज्ञान है। मैं राग से भिन्न हूँ—ऐसी अनुभूति द्वारा उदित आत्मज्ञान से आत्मा प्राप्त होता है, व्यवहाररत्नत्रय के शुभराग से आत्मा प्राप्त नहीं होता।

आत्मज्ञान द्वारा ज्ञात आत्मा को जैसा जाना वैसा ही आत्मा है—ऐसी प्रतीति से सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। यहाँ सम्यग्दर्शन का लक्षण बता रहे हैं कि भेदज्ञान की प्रवीणता से उत्पन्न आत्मज्ञान द्वारा आत्मा को जैसा जाना वैसा ही प्रतीति में आना—यह सम्यग्दर्शन का

लक्षण है। ज्ञान में आत्मा ज्ञात हुए बिना श्रद्धा किसकी करेंगे ? अज्ञात का श्रद्धान तो खरगोश के सींग के समान है। जिसप्रकार खरगोश के सींग नहीं होते, उसीप्रकार अज्ञात की श्रद्धा नहीं होती। इसलिये यहाँ ज्ञान के ऊपर जोर दिया है कि सर्वप्रथम जाननेवाले को जानना और जैसा जाना वैसी श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है। यहाँ तो सम्यग्ज्ञान कारण और सम्यग्दर्शन कार्य—इस शैली से बात की है, क्योंकि सम्यग्ज्ञान बिना श्रद्धा कैसे करेंगे ?

उपर्युक्त विधि से सम्यग्ज्ञान-श्रद्धान उदित होने पर आत्मा में नि:शंकपने लीनता की सामर्थ्य प्रगट होती है, अर्थात् वह आत्मा आत्मा में आचरण करके मोक्षदशा प्रगट करता है। यही मोक्ष को साधने की रीति है। ज्ञान और राग की एकत्वबुद्धि छूटने पर आत्मा में एकत्वबुद्धि हुई तथा समस्त परभावों को छोड़कर नि:शंकपने आत्मा में स्थिर होने की सामर्थ्य प्रगट होने से आत्मा का चारित्र उदित होता है और मोक्षदशा की साधना होती है।

पहले जब यह जीव निमित्त या राग से लाभ मानता था, तब उनका लक्ष्य छोड़कर अंतर में नि:शंकतया ठहरने में असमर्थ था। परंतु अब निमित्त और राग से भेदज्ञान होने पर आत्मा में नि:शंकतया स्थिरता की सामर्थ्य प्रगट हो गयी। शंकावाले जीव को चारित्र प्रगट नहीं होता। आत्मा की नि:शंक श्रद्धा और ज्ञान के बाद उसमें नि:शंकतया एकाग्रता होने से चारित्रभाव का उदय होता है। बाह्य क्रिया से चारित्र प्रगट नहीं होता, अपितु आत्मा में नि:शंकपने लीन होने से चारित्र प्रगट होता है और वह चारित्र आत्मा को साधता है। 'हे नाथ! आपके चरण-कमलों की भक्ति से मेरे चारित्र की निर्मलता हुई' ऐसा ज्ञानी भी भक्ति से कहते हैं परंतु यह तो निमित्त की अपेक्षा कथन है। अंतर में ज्ञानी जानते हैं कि भक्ति का रागभाव चारित्र की निर्मलता का कारण नहीं है, परंतु अंतर में एकाग्रता से ही निर्मलता होती है।

इसप्रकार साध्य आत्मा की सिद्धि की उपपत्ति है—इसकी व्याख्या करके अब साध्य आत्मा की सिद्धि की अन्यथा अनुपपत्ति है—इसकी व्याख्या करते हैं।

परंतु जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा आबाल-गोपाल सबके अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी अनादि बन्ध के वश परद्रव्यों के साथ एकत्व के निश्चय से मूढ़-अज्ञानीजन को 'जो यह अनुभूति है, वही मैं हूँ' ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता और उसके अभाव से अज्ञात का श्रद्धान गधे के सींग के समान है, इसलिए श्रद्धान भी उदित नहीं होता तब समस्त अन्य भावों के भेद से आत्मा में नि:शंक स्थिर होने की असमर्थता के कारण आत्मा का

आचरण उदित न होने से आत्मा को नहीं साध सकता। इसप्रकार साध्य आत्मा की सिद्धि की अन्यथा अनुपपत्ति है।

अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा आबाल-गोपाल सभी को सदाकाल स्वयं अनुभव में आता है। अज्ञानी को भी अल्प-विकसित खंड-खंड ज्ञानपर्याय में आत्मा ही अनुभव में आता है। ज्ञान की वर्तमान पर्याय का स्वभाव स्वपर-प्रकाशक होने से अज्ञानी को भी आत्मा ही अनुभव में आता है।

अनुभूतिस्वरूप अर्थात् ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा बालक से लेकर वृद्ध तक सबको अनुभव में आने पर भी अनादि से राग पर दृष्टि होने से अज्ञानी जीव पर्याय में ज्ञान होते हुए भगवान आत्मा को नहीं जानता अर्थात् उसे 'जो यह अनुभूति है, वही मैं हूँ'—ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता।

जिसप्रकार आँख के सामने वस्तु रखी होने पर भी यदि लक्ष दूसरी ओर हो तो वह वस्तु नहीं दिखती; उसीप्रकार अज्ञानी की ज्ञानपर्याय में अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा अनुभव में आने पर भी अज्ञानी का लक्ष राग पर होने से उसे अनुभव में आते हुए आत्मा का ज्ञान नहीं होता। तुझे तेरी नजर में तू ही दिखता है; परन्तु तेरी नजर तुझ पर नहीं है, इसलिए तू तुझे नहीं जानता।

अज्ञानी को अल्पज्ञ पर्याय में सर्वज्ञस्वभावी आत्मा ज्ञात होता है; परंतु वह 'मुझे आत्मा ज्ञात हो रहा है' ऐसा लक्ष नहीं करता और 'मुझे परज्ञेय ज्ञात होते हैं' इसप्रकाकर ज्ञेयों में एकत्वबुद्धि करता है; इसलिये उसे 'जो यह अनुभूति है, वही मैं हूँ'—ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता।

अज्ञानी जीव राग को जानते समय स्वयं को रागरूप ही अनुभव करता है; परंतु यह नहीं जानता कि राग को जाननेवाला ज्ञान रागरूप नहीं हो जाता, वह तो ज्ञानरूप ही रहता है; इसलिये 'मैं ज्ञानस्वरूप हूँ' ऐसा अनुभव उसे नहीं होता। राग और अन्य ज्ञेयों में एकत्वबुद्धि होने के कारण उसे आत्मा में एकाग्रता नहीं होती।

शरीर, राग तथा अन्य ज्ञेयों को जानते समय भी अपना ज्ञान ही अनुभव में आता है, परंतु अज्ञानी उस ज्ञान को ज्ञेयों से भिन्न नहीं जानता, वह तो ज्ञेयों को ही अपना स्वरूप मान लेता है; इसलिए उसे आत्मज्ञान नहीं होता।

प्रवचनसार की २००वीं गाथा में तो आचार्यदेव कहते हैं कि भगवान आत्मा तो अनादि से ज्ञायकरूप ही रहा है, उसने अपना ज्ञायक स्वभाव कभी नहीं छोड़ा, परंतु मोह के वश अपने को देह अथवा रागरूप मानता है। यद्यपि देह और रागादि में एकत्व का अध्यवसान होते हुए भी ज्ञान तो ज्ञानरूप ही अनुभव में आता है; तथापि रागादि में तन्मय होने से अज्ञानी ज्ञान को राग से पृथक् अनुभव नहीं करता।

अज्ञानी की दृष्टि परद्रव्य के ऊपर ही है। उसने अनादिकाल से बंध के वश होकर ही परिणमन किया है, ज्ञानस्वभाव के वश होकर कभी परिणमन नहीं किया है। 'मैं ज्ञायक ही था, ज्ञायक ही हूँ, और ज्ञायक ही रहूँगा, कभी भी ज्ञान को छोड़कर जड़रूप नहीं होऊँगा' —अज्ञानी ऐसा नहीं जानता; इसलिये उसे आत्मज्ञान उदित नहीं होता। आत्मज्ञान बिना श्रद्धान नहीं होता और ज्ञान-श्रद्धान न होने से चैतन्यस्वभाव में स्थिरता की शक्ति प्रगट नहीं होती।

इसप्रकार शुद्धात्मा के सेवन बिना अज्ञानी को मोक्षरूपी साध्य की सिद्धि नहीं होती।

साध्य आत्मा की सिद्धि निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से होती है, व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से नहीं; ऐसा अनेकांतस्वरूप है। वास्तव में साध्यसिद्धि तो आत्मा के आश्रय से होती है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भेद तो समझाने के लिये किया है।

साध्य आत्मा की सिद्धि दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही है, अन्य प्रकार से नहीं। क्योंकि पहले तो आत्मा को जाने कि यह जो जाननेवाला अनुभव में आता है-सो मैं हूँ। इसके बाद उसकी प्रतीतिरूप श्रद्धान होता है, क्योंकि जाने बिना किसका श्रद्धान करेगा? तत्पश्चात् समस्त अन्य भावों से भेद करके अपने में स्थिर हो। इसप्रकार सिद्धि होती है। किंतु यदि जाने ही नहीं तो श्रद्धान भी नहीं हो सकता और ऐसी स्थिति में स्थिरता कहाँ करेगा? इसलिये अन्य प्रकार से साध्यसिद्धि नहीं होती, यह निश्चय है।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

(८) अव्याबाध—अव्याबाध किस प्रकार प्रगट हुआ ? आत्मा स्वाभाविक वस्तु है; राग, द्वेष, खेद, पुण्य, पाप आदि भावों से रहित है। ऐसे सहजानंद स्वभाव की रुचि की, उसमें वीर्य-सामर्थ्य मिलाकर जिस सुखरूपी अमृत का एकदेश अनुभव हुआ उसके परिणामस्वरूप अव्याबाध अनंत सुख नाम का सिद्ध में आठवाँ गुण प्रगट होता है।

सिद्ध भी पहले संसारी थे, उनको भी आकुलता थी। उस आकुलता की रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि कर मुनिपना अंगीकार किया था। उस मुनिपने में खेद नहीं था, परीषह आये, पेट में शूल की बीमारी हुई—आदि अनेक कष्ट आये; तब भी उन पर लक्ष्य नहीं था। सिद्ध का अर्थी शुद्धस्वभाव का आश्रय करता है, उसको खेद नहीं होता, किंतु आनंद मानता है। इसप्रकार आत्मा के आनंद का एक अंश अनुभव किया था, उसके फलस्वरूप साता-असाता की कल्पना से रहित अनाकुल आनंद के फलस्वरूप अव्याबाध सुख प्राप्त करते हैं।

कोई मुनि आठ वर्ष की आयु में दीक्षा लेकर सिद्ध होता है और कोई करोड़ों वर्ष मुनि अवस्था में रहकर सिद्ध होता है तब भी उस मुनि को खेद नहीं होता। मुनि में ऐसा आनंद धैर्यसहित होता है, ऐसी सहज दशा है।

जो चारित्र को कष्टदायक मानता है और कहता है कि मुनि ने कितने दुःख सहन किये; वह देव-गुरु-शास्त्र की आशातना (अविनय) करता है, नवपदार्थों को समझता नहीं। शुद्ध आत्मा के अवलंबन से संवर-निर्जरा होती है और वह शांतिदायक है, ऐसा समझता नहीं। भोजन न करें उसको लोग तप कहते हैं, वह तप नहीं है; इच्छा का निरोध यही तप है। मुनि सुखरूपी अमृत का स्वाद लेते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा यह आह्लाद दशा है, पवित्र दशा है। उस रूप विशेष एकाग्रता होने से अव्याबाध गुण प्रगट होता है।

सिद्ध की व्याख्या करने से साधकपना तथा धर्म कैसा होता है ? यह भी बताते हैं। धर्म

शांतिदायक और आनंददायक होता है लेकिन कष्टदायक नहीं हो सकता। सिद्ध में अनंत गुण हैं लेकिन आठ कर्मों के अभाव से आठ गुण मध्यम रुचि के धारक शिष्यों के लिये बताये हैं।

अब विस्तार से मध्यम रुचि के धारक शिष्यों के लिये विशेष भेदनय के अवलंबन से दूसरे गुण बताते हैं—

गति रहितत्व—मेरा स्वभाव गति रहित है, ऐसी आत्मा के भानपूर्वक लीनता करके सिद्धदशा प्रगटती है, उनको गति रहितत्वपना प्राप्त होता है। पश्चात् उनको गति में जन्म नहीं लेना पड़ता।

इंद्रिय रहितत्व—अतीन्द्रिय मेरा स्वभाव है, ऐसी दृष्टि की लीनतापूर्वक इंद्रिय रहितत्वपना सिद्ध में प्रगट होता है।

शरीर रहितत्व—मेरा आत्मा त्रिकाल शरीररहित है, ऐसी श्रद्धा ज्ञान की लीनता करने से शरीर रहितत्वपना सिद्ध में प्रगट होता है।

योग रहितत्व—मन-वचन-काय तो जड़ हैं लेकिन उनके निमित्त से आत्मा के प्रदेश का कंपन होना यह भी मेरा स्वभाव नहीं, ऐसे भानपूर्वक लीनता से योग रहितत्वपना प्रगट होता है।

वेद रहितत्व—वर्तमान पर्याय में वेद परिणाम होने पर भी मेरा स्वभाव अवेदी है। मैं पुरुष, स्त्री, नपुंसक नहीं हूँ; मैं तो आत्मा हूँ, ऐसे भान और लीनता से वेद रहितत्वपना प्रगटता है।

कषाय रहितत्व—मेरा स्वभाव कषायरहित है, मैं परिपूर्ण शुद्ध हूँ, ऐसे भान और लीनता से कषायरहितत्व प्रगटता है। भक्तों पर कष्ट पड़े और भगवान जन्म लें ऐसा नहीं होता। क्योंकि उनको कषाय का अभाव है, केवलज्ञान में जानते हैं कि भक्त लोग भी शक्ति से परिपूर्ण हैं।

नाम रहितत्व—जसाणी, संघवी, कोठारी, दोशी, पटेल आदि नाम आत्मा के नहीं होते। मिथ्यादृष्टि विपरीत मानता है। स्वभाव नामरहित है, ऐसे भान-लीनता द्वारा नाम रहितत्वपना प्रगटता है।

गोत्र रहितत्व—ऊँच-नीचपना मेरे स्वभाव में नहीं है, ऐसी दृष्टि और लीनता द्वारा गोत्र रहितत्वपना प्रगटता है।

आयु रहितत्व—मेरा आत्मा बगैर आयु का है, ऐसे भान और लीनतापूर्वक

आयुरहितत्वपना प्रगटता है। सिद्ध को आयु नहीं होती। सादि और अनंतकाल सिद्धदशा रहती है।

इसप्रकार सिद्धों के विशेष गुण कहे। वे संसारी जीवों में अथवा दूसरे द्रव्यों में नहीं होते।

अब छह द्रव्यों में सामान्यगुण होते हैं, वे सिद्ध में भी होते हैं, उसकी बात करते हैं—

अस्तित्व—प्रत्येक द्रव्य इस गुण से सदा विद्यमान रहता है। जीव, परमाणु, आकाश, निगोद के जीव तथा सिद्ध जीवों में अर्थात् सबमें अस्तित्व गुण है; इसलिये उसको सामान्य गुण कहते हैं।

वस्तुत्व—इस गुण से प्रत्येक द्रव्य स्वयं-स्वयं का प्रयोजनभूत कार्य करता है। परमाणु परमाणु का कार्य करता है, ज्ञानानंद स्वभाव स्वयं का कार्य करता है।

प्रमेयत्व—इस गुण के कारण से प्रत्येक द्रव्य किसी न किसी ज्ञान का विषय होता है। सिद्ध में प्रमेयत्व गुण है, इसलिये हमारे ज्ञान का विषय हो सकते हैं।

इसके अतिरिक्त द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व वगैरह सामान्य गुण हैं। तीर्थंकर भगवान की देशनानुसार वीतरागी-शास्त्र रचे गये हैं, उन्हें उस अनुसार जानना।

अब संक्षेप रुचिवाले शिष्य को सिद्धों के गुण जानना हो, तो विवक्षित अभेदनय से अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य ऐसे चार गुण सिद्ध में संक्षेप से जानना। मुद्दे की बात यह है कि ये चार गुण कहाँ से प्रगट हुए। आत्मा अनंत शक्ति का पिण्ड है उसके अवलंबन से ये चार गुण प्रगटते हैं, ऐसी श्रद्धा, ज्ञान करना चाहिये।

वह जीवात्मा—बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा—ऐसे तीन भेदों से तीन प्रकार का है। ये तीन जीव की अवस्थायें हैं।

निज शुद्ध आत्मा के ज्ञान से प्रादुर्भूत जो पारमार्थिक सुख है, उससे विरुद्ध जो इंद्रिय सुख है—उसमें जो आसक्त है, वह मिथ्यादृष्टि है। शुद्ध आत्मा का श्रद्धान नहीं करता और केवल इंद्रियों का भरोसा करता है, वह मूढ़ है। इससे भिन्न पारमार्थिक सुख बहिरात्मा की श्रद्धा में नहीं बैठता है। स्वर्ग में, सेठाई में, पुण्य-पाप में सुख माने वह बहिरात्मा है। धर्मीजीव इंद्रपद तथा इंद्रियों के सुख को तृण समान मानता है। इंद्रियाँ और उनके सुख के कारणभूत मैं नहीं हूँ, मैं चिदानंद हूँ; ऐसी आत्मा की प्रतीति मिथ्यादृष्टि को नहीं होती। शब्दों में, इज्जत-

आबरू में, तथा विषयों में सुख है; इसप्रकार माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। जो जीव दया-दानादिक में और वर्तमान शुभ में लाभ मानता है, उसको भोग की तथा विषयों की इच्छा बनी रहती है। अंतर (चैतन्य) शक्तिरूप स्वभाव है, उसमें हित नहीं मानता। पुण्य-पाप को अच्छा मानने में अनुकूल संयोगों को हितरूप तथा प्रतिकूल संयोगों को अहितरूप मानता है। उसको आत्मा का विश्वास नहीं होता। वह संसार में भ्रमण करता है।

मैं कौन हूँ? अथवा अशरीरी सिद्ध हुए वे कहाँ से हुए? तीर्थंकर, जो कि चैतन्य की इतनी प्रशंसा करते हैं, वह ख्याल में नहीं आती, इसका कारण क्या? इसप्रकार यथार्थ विचार कर शुद्ध आत्मा की रुचि करे, वह धर्मी है और रुचि न करे वह बहिरात्मा अधर्मी है।

आत्मा देह से रहित है। देह पुद्गल-अजीव है। शरीर और विकाररहित आत्मा शुद्धद्रव्य है। उस आत्मद्रव्य की भावनारूप एकाग्रता जिसको नहीं, उसको शरीर और बाहर के पदार्थों में एकाग्रता हुए बिना नहीं रहती। शरीर, मन, वाणी वगैरह बाहर के संयोग ठीक हों तो ही ठीक रहता है। इसप्रकार अज्ञानी देह की भावना में एकरूप रहता है। बहिरात्मा कहता है—

पहला सुख निरोगी काया, दूजा सुख हो घर में माया।
तीजा सुख कुलवंती नारी, चौथा सुख सुत आज्ञाकारी॥

इसप्रकार माननेवाले मूढ़े हैं। सुख आत्मा में होगा कि शरीर की निरोगता, स्त्री, पुत्र, धन में होगा? स्वयं की अत्मा के अतिरिक्त पर में सुख मननेवाले मूढ़ हैं और फिर धर्म के नाम पर अज्ञानी जीव कहते हैं कि वज्र-वृषभ-नाराच संहनन, शरीर की हड्डियाँ मजबूत मिलें तो केवलज्ञान होता है, यह भी अज्ञानभाव है। अनंतकाल से आत्मा की परवाह नहीं की, अंतर में शक्ति भरी हुई है, यह बात नहीं जमती। पर से भेदविज्ञान करने के बदले राग के साथ एकत्वबुद्धि करता है, वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है।

स्वयं का आत्मा पर से भिन्न है। विकार मेरे स्वरूप में से निकल जाता है, इसलिये वह मेरा स्वरूप नहीं। मैं ज्ञानस्वरूपी आत्मा हूँ—ऐसी अंतर में श्रद्धा-ज्ञान करे, उसको अंतरात्मा कहते हैं।

आत्मा तो ज्ञानस्वभाव है—वह उपादेय है, और राग-द्वेष के परिणाम—यह दोष है। दोष और आत्मा के बीच विवेक करनेवाला ज्ञान है। आत्मा का ज्ञान पर से विवेक करने की

शक्तिवाला है, इसके बदले राग को और ज्ञान को एक माने वह नयविभाग को नहीं जानता है। दया-दानादि के भाव यह व्यवहारनय से पर्याय में है, लेकिन निश्चय से स्वभाव में नहीं है। निश्चय से आत्मा शुद्धस्वभावी है। इसप्रकार दो नय से जिसे ज्ञान नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि है।

सम्यग्ज्ञान की निर्मलपर्याय शुद्ध आत्मा उपादेय है और विकारी परिणाम हेय हैं। इसप्रकार जो ज्ञानपर्याय विवेक करती है वह वर्तमान निर्मलपर्याय है, किंतु त्रिकालीस्वरूप नहीं है।

वर्तमान पर्याय में हो रहे राग-द्वेष के परिणाम वे क्षणिक हैं, लेकिन स्वभाव में नहीं है। इसप्रकार दोष को दोष जानना।

आत्मा शुद्धचैतन्यस्वरूप है, वह त्रिकाली है। इसप्रकार त्रिकाली शुद्ध आत्मा का, वर्तमान भेद-ज्ञानरूप पर्याय का, व वर्तमान दोषवाली पर्याय का—इन तीन का जिसको भेदविज्ञान नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि है।

इसप्रकार दोष अथवा विकार को जानना, दया-दानादि भक्ति के परिणामों को जानना यह व्यवहार है, अशुद्धनय का विषय है। वर्तमान ज्ञान-पर्याय जितना आत्मा नहीं है, किंतु आत्मा तो शुद्धद्रव्य है; ऐसा जिसको भेदज्ञान नहीं, वह मूढ़ है।

यहाँ अधर्म कैसे होता है? उसी व्याख्या चलती है। अधर्म का स्वरूप जानकर द्रव्य के आश्रय से धर्म प्रगट कर सकता है। इसप्रकार श्रद्धा करना वह अधर्म है।

यहाँ तो कर्म की बात नहीं की। अज्ञानी जीव कहते हैं कि 'जिनेन्द्र भगवान ने कहा है कि संसारी जीव आठ कर्मों से भ्रमण करते हैं।' भाई! कर्म तो जड़ हैं, जड़कर्म से आत्मा भ्रमण नहीं करता। जो जगत की रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि नहीं करता वह भ्रमण करता है। पुण्य-पाप के परिणाम दोष हैं, और दोषरहित आत्मा शुद्ध है, और उसका भेदज्ञान एकसमय की पर्याय है, त्रिकालस्वरूप नहीं है; ऐसा तीन का भेदज्ञान जिसको नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि है।

जैसे व्यापारी बहियाँ तपासता है; उसीप्रकार स्वयं के आत्मा को तपासना चाहिये। अनादि से जीव अधर्म का आचरण कैसे करता है? हे आत्मन्! तूने क्यों भ्रमण किया? तेरे में भेदज्ञान दशा प्रगट करने की सामर्थ्य है। वह ज्ञान कैसे प्रगट हो, उसकी खबर नहीं है, वही बहिरात्मा है। वर्तमान में दोष है, वह विकार है, अशुद्ध निश्चयनय का विषय है। दोष तथा

त्रिकाली स्वभाव का भेदज्ञान कर जाननेवाली ज्ञानपर्याय, वह एकदेश शुद्ध निश्चयनय का विषय है; और दोषरहित शुद्ध आत्मा वह परमशुद्धनिश्चयनय का विषय है। इसप्रकार भेद करके नहीं जानता, वह मिथ्यादृष्टि है।

तुझे पर से भेदज्ञान नहीं है, इसलिये पर से एकत्व-ज्ञान है, इससे भ्रमण करता है। आत्मा निर्दोष त्रिकाल है। पुण्य-पाप यह दोष है, और उसका भेद-ज्ञान वह 'चित्' है। यह जैसा है, वैसी प्रतीति नहीं आती, इसलिये भ्रमण करता है। वर्तमान में जो दोष होता है, वह पर से होता है—इसप्रकार जो मानता है, उसको दोष का (अपराध) ज्ञान नहीं है। और मैं भेदज्ञान नहीं करता इसलिये मुझको ज्ञान नहीं होता, इसप्रकार नहीं मानता; कर्म मन्द पड़ने से ज्ञान होता है, ऐसा माननेवाले को 'चित् का' ज्ञान नहीं है। इस रीति से जिसको त्रिकालीस्वरूप 'चित्' और दोष का ज्ञान नहीं है, वह भ्रमण करता है।

अथवा वीतराग भगवान द्वारा कहे हुए नव पदार्थों (जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष) के स्वरूप का परस्पर अपेक्षा सहित नय के विभाग से जिसको श्रद्धा ज्ञान नहीं वह बहिरात्मा है। पुण्य-पाप होता है, वह आस्रव है, संवर नहीं है। निर्दोष स्वभाव के आश्रय से संवर-निर्जरा होती है। वस्तु त्रिकाल है, निमित्त पर है, राग स्वयं से होता है, साधकदशा में व्यवहार आता है—किंतु राग से कल्याण नहीं होता; इस अपेक्षावाला ज्ञान जिसको नहीं, उसका कल्याण नहीं होता।

जीवों ने प्रेमपूर्वक तत्त्व सुना नहीं, पैसे में रुचि होती है, तत्त्व में रुचि नहीं होती। पैसा, हीरा, माणिक वगैरह को जानता है। स्वयं, स्वयं को नहीं जानता, स्वयं को जाननेवाला आत्मा है। उसको (जीव को) आत्मा का माहात्म्य नहीं आता, पर तथा पैसे वगैरह का माहात्म्य आता है। 'तू (पैसा) ठीक है, किंतु तेरे को जाननेवाला मैं नहीं हूँ।' इसप्रकार अज्ञानी जीव पर को माहात्म्य देता है। पैसा ज्ञान से जाना जाता है, इसलिये ज्ञान की कीमत करना चाहिये। इसके बदले में पैसे की कीमत करे, वह मिथ्यादृष्टि है। यथार्थ में ज्ञान की महिमा है, ज्ञान के बिना सब शून्य है। जगत में अनंत द्रव्य हैं, वे स्वयं के ज्ञान से भिन्न हैं, वे स्वयं आत्मा नहीं हैं, स्वयं के लिये नहीं हैं, उनके कारण से ज्ञान नहीं होता, स्वयं के ज्ञानस्वभाव के कारण से ज्ञान होता है; यह बात उसको नहीं जमती।

'चित्'—विवेक, ज्ञान यह पर्याय है और मैं आत्मा हूँ। यह विकार है और मैं निर्दोष आत्मा हूँ। ज्ञानपर्याय एकसमय की है और मैं त्रिकाली हूँ। इसप्रकार विवेक किये बिना जीव मिथ्यादृष्टि रहता है। यहाँ निश्चय और व्यवहार से पदार्थों का ज्ञान नहीं है, उसको बहिरात्मा कहते हैं।

बहिरात्मा से भिन्न लक्षणवाला अन्तरात्मा है, उसे तीनों का ज्ञान विद्यमान है। (१) त्रिकाली स्वभाव (२) चित्-वर्तमान भेद-ज्ञान की पर्याय (३) वर्तमान दोष। इसप्रकार तीनों का ज्ञान बर्तता है। वह जानता है कि जड़ की पर्याय जड़ के कारण से होती है, आत्मा जड़ का कर्त्ता नहीं है, राग घटाता है, उसको जानता है अन्य कुछ करता नहीं है। बाह्य के जड़ पर्यायों की अवस्था स्वकाल में होती है, उसे कौन करे कौन रोके? मंदिरादि जड़पदार्थों के संयोग स्वकाल में होते हैं।

अज्ञानी जीव को पर से भिन्न हूँ, यह बात नहीं जमती। वह मानता है कि जड़पदार्थ की मंदिरादि की अवस्था हमारे से होती है। और हम न करना चाहें तो नहीं होती, यह सब मिथ्या मान्यता है। जड़ पदार्थों की अवस्था पुद्गल परावर्तन के नियमानुसार स्वतंत्र होती है, ऐसी जिसको खबर नहीं है और राग को धर्म मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। और जिसको जड़, चेतन के बीच विवेक बर्तता है, और पुण्य यह स्वभाव नहीं किंतु विकार है, ऐसे विवेक का भान है, वह अंतरात्मा है। इस रीति बहिरात्मा और अंतरात्मा के लक्षण जानना चाहिये।

अब परमात्मा का लक्षण कहते हैं। परमात्मा कोई दूसरा नहीं है। लेकिन यह आत्मा स्वयं भान करके परमात्मा होता है। परमात्मदशा का लक्षण संपूर्ण तथा निर्मल केवलज्ञान द्वारा समस्त लोकालोक को जानना होता है, इसलिये उसे व्यापक कहा जाता है। अतएव परमात्मा को विष्णु कहते हैं। विष्णु कोई जगत को रचनेवाला अथवा व्यापक नहीं हैं। किंतु स्वयं परमात्मदशा को प्राप्त होने से विष्णु कहा जाता है। कर्म गये इसलिये परमात्मा कहेंगे ऐसा नहीं है। किंतु स्वयं परमात्मा हुआ है, तब कर्म जाते हैं।

इसप्रकार बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा ऐसी तीन प्रकार से बात की।

[क्रमशः]

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न- वर्तमान में कर्मबंधन है-हीनदशा है, रागादिभाव भी वर्तते हैं, तो ऐसी दशा में शुद्धात्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है ?

उत्तर- रागादिभाव वर्तमान में वर्तते होने पर भी वे सब भाव क्षणिक हैं, विनाशीक हैं, अभूतार्थ हैं, झूठे हैं। अतः उनका लक्ष छोड़कर त्रिकाली ध्रुव शुद्ध आत्मा का लक्ष करके आत्मानुभूति हो सकती है। रागादिभाव तो एक समय की स्थितिवाले हैं और भगवान आत्मा त्रिकाल टिकनेवाला अबद्धस्पृष्टस्वरूप है। इसलिये एकसमय की क्षणिक पर्याय का लक्ष छोड़कर त्रिकाली शुद्ध आत्मा का लक्ष करते ही—दृष्टि करते ही आत्मानुभूति हो सकती है।

प्रश्न- गुरुवाणी से आत्मवस्तु का स्वीकार करने पर भी अनुभव क्यों नहीं होता ? अनुभव होने में क्या शेष रह जाता है ?

उत्तर- गुरुवाणी से स्वीकार करना अथवा विकल्प से स्वीकार करना—वह वास्तविक स्वीकार नहीं है। अपने भाव से—अपनी आत्मा से स्वीकार करना चाहिये। कुंदकुंदाचार्य ने कहा है कि जो हम कहते हैं, वह तुम अपने स्वानुभव से प्रमाण करना। जो अपने अंतर से सच्चा निर्णय करेगा उसको अनुभव होगा।

प्रश्न- आत्मा की कितनी लगन लगे तो छह मास में सम्यग्दर्शन हो ?

उत्तर- ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक की लगन लगनी चाहिये। ज्ञायक की धुनि लगे तो छह मास में कार्य हो जाये और उत्कृष्ट लगन लगे तो अंतर्मुहूर्त में हो जाए।

प्रश्न- जिसके प्रताप से जन्म-मरण टले और मुक्ति प्राप्त हो ऐसा अपूर्व सम्यग्दर्शन पंचमकाल में शीघ्र हो सकता है क्या ?

उत्तर– पंचमकाल में भी क्षणभर में सम्यग्दर्शन हो सकता है। पंचमकाल सम्यग्दर्शनादि प्राप्त करने के लिये प्रतिकूल नहीं है। सम्यग्दर्शन प्रगट करना तो वीरों का काम है, कायरों का नहीं। पंचमकाल में नहीं हो सकता, वर्तमान में नहीं हो सकता—ऐसा मानना कायरता है। बाद में करेंगे, कल करेंगे—इसप्रकार वायदा करनेवालों का यह काम नहीं है। आज ही करेंगे, अभी करेंगे—ऐसे वीरों का यह काम है। आत्मा अनंदस्वरूप है, उसके समक्ष देखनेवालों को पंचमकाल क्या करेगा ?

प्रश्न– दीर्घकाल से तत्त्वाभ्यास करने पर भी आत्मा प्राप्त क्यों नहीं हुआ ?

उत्तर– आत्मा अतीन्द्रिय आनंद का नाथ प्रभु है, उस आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद की लगन उत्पन्न हो, आत्मातिरिक्त अन्यत्र मिठास लगे नहीं, रस पड़े नहीं, जगत के पदार्थों का रस फीका लगने लगे अर्थात् संसार के राग का रस उड़ जाये। अहो! जिसका इतना विशद् बखान हो रहा है, वह आत्मा अनंतानंत गुणों का पुंज प्रभु है कौन ?—ऐसा आश्चर्य उत्पन्न हो, उसकी लगन लगे, धुनि चढ़े—तब समझना चाहिये कि आत्मा प्राप्त होगा ही; न प्राप्त हो—ऐसा नहीं हो सकता। जैसा कारण होगा वैसा कार्य होगा ही; कारण उपस्थित हुए बिना कार्य होता नहीं और कारण की अपूर्णता में भी कार्य संपन्न करने की क्षमता नहीं। आत्मा के आनंदस्वरूप की अंदर से सच्ची लगन लगे, बेचैनी हो, स्वप्न में भी उसका अभाव न हो, तब समझना चाहिये कि अब आत्मानुभूति अवश्य होगी।

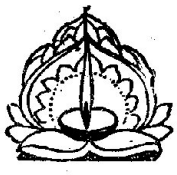

समाचार दर्शन

पूज्य गुरुदेव का मंगल विहार

पूज्य गुरुदेव सुख-शांति में विराजमान हैं। वे दिनांक ४-१२-७८ से २५-१२-७८ तक २२ दिवस के प्रवास पर रहेंगे। कार्यक्रम निम्नानुसार है:—

दिनांक ४-१२-७८	प्रस्थान सोनगढ़ से
५-१२-७८ से ९-१२-७८ तक	बड़ौदा
१०-१२-७८ से १७-१२-७८ तक	पालेज
१८-१२-७८ से २५-१२-७८ तक	अहमदाबाद

मेरठ में शिक्षण-शिविर

दिगंबर जैन समाज मेरठ के आमंत्रण पर टोडरमल दि० जैन सि० महाविद्यालय, जयपुर के छात्रों द्वारा दिनांक २५-१२-७८ से १-१-७९ तक अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में बच्चों व प्रौढ़ों के नैतिक उत्थान, सदाचारमय जीवन एवं सामान्य तत्त्वज्ञान के लिये एक आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन किया जा रहा है। शिविर में अनेक धार्मिक कक्षाओं के साथ-साथ डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल तथा पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा आदि विद्वानों के प्रभावपूर्ण आध्यात्मिक प्रवचनों का आयोजन भी किया जा रहा है। बाहर से पधारनेवाले बंधुओं के आवास आदि की समुचित व्यवस्था रहेगी।

भिण्ड में अभूतपूर्व धर्मप्रभावना

भिण्ड :- दिगंबर जैन परिषद् के अधिवेशन के तत्काल बाद दिनांक २१-११-७८ से २७-११-७८ तक एक विशाल आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन दि० जैन मुमुक्षु मंडल के तत्त्वावधान में हुआ। शिविर का उद्घाटन दि० जैन परिषद् के अध्यक्ष सेठ डालचंदजी ने किया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में श्री अक्षयकुमारजी जैन, भू०पू० संपादक, नवभारत टाइम्स तथा अन्य अनेक महानुभाव उपस्थित थे।

डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के प्रवचनों से भिंड नगर की एक प्रकार से कायापलट ही

हो गयी। उनके प्रवचनों से भिण्ड नगर के संबंध में समाज में फैली अनेक भ्रांतियाँ दूर हुईं। सर्वत्र उनके प्रवचनों की ही चर्चा रहती थी। मेरठ, आगरा, मैनपुरी, फिरोजाबाद, ग्वालियर, इटावा, करहल, जसवंतनगर, मौ, गोरमी आदि अनेक स्थानों से पधारे हुए लोगों के अतिरिक्त जैन-अजैन हजारों भाई विशाल पंडाल में प्रवचन से पूर्व ही अपना स्थान ग्रहण कर लेते थे। पंडित ज्ञानचंदजी की कक्षा एवं प्रवचन भी बहुत पसंद किये गये। कार्यक्रम सुबह पाँच बजे से रात के दस बजे तक चलता था, जिसमें प्रौढ़ों की कक्षाऐं पंडित रतनचंदजी भारिल्ल एवं पंडित धन्नालालजी लेते थे। महिलाओं की कक्षाओं का संचालन पंडित रतनचंदजी की धर्मपत्नी श्रीमती कमलाबाई ने किया। पंडित रमेशचंदजी बालकों की कक्षाएँ लेते थे। लगभग तीन हजार का सत्-साहित्य बिका और आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के अनेक आजीवन तथा वार्षिक ग्राहक बने। अंत में डॉ० भारिल्लजी को अभिनंदन-पत्र भेंट किया गया।

—इंद्रसेन बजाज, मंत्री

नोट—दिगंबर जैन परिषद् के भिण्ड अधिवेशन के समाचार अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं, अत: अगले अंक में दिये जावेंगे। **—प्रबंध संपादक**

हस्तिनापुर मेला : बाबूभाईजी का पदार्पण

हस्तिनापुर वार्षिक मेले के अवसर पर अध्यात्मप्रवक्ता पंडित बाबूभाई मेहता पधारे। तीनों समय उनकी आध्यात्मिक तत्त्ववाणी को सुनकर मेले में उपस्थित सहस्त्रों नर-नारियों ने दत्तचित्त हो धर्म लाभ लिया। क्षेत्र के लिये आपने ५,०००/- रुपये की धनराशि प्रदान की। रथयात्रा के दिन पिछले वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष जनसमुदाय की उपस्थिति अधिक थी, जिसका श्रेय श्री सुकुमारचंदजी, प्रधानमंत्री, तीर्थक्षेत्र कमेटी एवं मेला संयोजक श्री धनप्रकाशजी जैन एवं उनके सहयोगियों को है। **— शिखरचंद जैन, मैनेजर**

श्री युगलजी द्वारा अमृतवर्षा

जयपुर :- श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय के भागीरथ प्रयत्नों से कोटा से विद्वद्वर्य श्री जुगलकिशोरजी 'युगल' दिनांक ९ नवंबर को यहाँ पधारे। अध्यात्मगंगा से उन्होंने सबको सिंचित किया तथा एक अनोखा तात्त्विक वातावरण प्रदान किया। उनके प्रवचनों में अंतर-बाह्य का एक अद्भुत सुमेल दृष्टिगत होता है। दिनांक ३० नवंबर को स्मारक

भवन के तत्त्वावधान में उनका विदाई समारोह मनाया गया तथा उनसे आगे भी पधारने का साग्रह अनुरोध किया। —ब्रह्मचारी जतीशभाई

भगवान महावीर और उनके सिद्धांतों पर डॉ० भारिल्लजी के सारगर्भित व्याख्यान

शहडोल (म०प्र०) :- दिनांक ५-११-७८ से १२-११-७८ तक डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के प्रतिदिन रात्रि ८ से ९ तक आध्यात्मिक प्रवचनों का आयोजन स्थानीय श्री पार्श्वनाथ दि० जैन मंदिर में किया गया। प्रवचनों के अतिरिक्त शासकीय महाविद्यालय, माइनिंग पोलेटेक्निक कॉलेज, बी०टी०आई० कालेज, शासकीय रघुराज हायर सैकण्डरी स्कूल, लक्ष्मीबाई कन्या उ०मा० विद्यालय आदि शिक्षण संस्थाओं में आपके सारगर्भित व्याख्यान हुए।

स्थानीय गाँधी चौक में श्री जी०पी० तिवारी, भूतपूर्व जिला एवं सत्र-न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक आमसभा का आयोजन किया गया। इस सभा में डॉ० भारिल्लजी ने भगवान महावीर और उनके सिद्धांतों पर विस्तृत प्रकाश डाला। अन्य प्रमुख वक्ताओं में डॉ० कन्छेदीलालजी शहडोल एवं पंडित मगनलालजी कोटा भी थे। दिनांक १२-११-७८ को समस्त जैन समाज की ओर से स्थानीय विद्वान पंडित बाबूलालजी वैद्य, आयुर्वेदाचार्य ने डॉ० भारिल्ल का हार्दिक अभिनंदन करते हुए उनसे पुनः पधारने का अनुरोध किया। सभी कार्यक्रमों की व्यवस्था एवं कुशल संयोजन सिंघई श्री नंदनलालजी ने किया था।

डॉ० भारिल्लजी शहडोल में डॉ० राजेन्द्र बंसल की दिवंगत धर्मपत्नी श्रीमती कुसुमलता बंसल के शोक में बैठने के लिये यहाँ पधारे थे। —अखिल बंसल

पंडित ज्ञानचंदजी द्वारा विशेष धर्मप्रभावना

श्री दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल, अजमेर के तत्त्वावधान में श्री ताराचंद ओमप्रकाश सोगानी द्वारा अष्टाह्निका पर्व पर सिद्धचक्र मंडल विधान का आयोजन किया गया। इस अवसर पर पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावालों के प्रतिदिन दोनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला तथा रत्नकरंडश्रावकाचार पर प्रवचन गोधों के धड़े की नसियाँ में हुए, जिनसे समाज में विशेष धर्मप्रभावना हुई।

सिद्धचक्र मंडल विधान पंडित चंपालालजी जैन नसीराबादवालों के सान्निध्य में संपन्न हुआ। श्री सेठ पूरणचंदजी गोदीका की अध्यक्षता एवं श्री सेठ महेन्द्रकुमारजी सेठी के मुख्य आतिथ्य में पंडित ज्ञानचंदजी का अभिनंदन किया गया तथा उनसे पुन: अजमेर पधारने का अनुरोध किया गया। इस अवसर पर एक हजार रुपये से अधिक का धार्मिक साहित्य बिका एवं आत्मधर्म व जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने। **— पूनमचंद लुहाड़िया, अध्यक्ष**

महाराष्ट्र में डॉ० प्रियंकरजी द्वारा धर्मप्रभावना

विगत दिनों डॉ० प्रियंकर यशवंत जैन महाराष्ट्र प्रांत के विभिन्न नगरों में पधारे। सभी स्थानों पर आपके प्रवचनों से अच्छी धर्म प्रभावना हुई। कार्यक्रम निम्नानुसार रहा:—

(१) बाहुबली - यहाँ दिनांक ३०-११-७८ को श्री आर्यनंदी मुनिराज के सान्निध्य में आपके समयसार की ४१५वीं गाथा पर प्रभावपूर्ण प्रवचन हुए। पंडिता गजाबेन के भी गोम्मटसार एवं परमात्मप्रकाश पर प्रवचन हुए। **(२) नान्द्रे** - यहाँ सर्वोदय स्वाध्याय मंडल के सहयोग से आपका व्याख्यान आयोजित किया गया। इस अवसर पर श्री महावलजी महाराज एवं श्री अकलंकजी महाराज ने भी तत्त्वोपदेश दिया। **(३) जयसिंहपुर** - नान्द्रे जाते हुए आप एक दिन के लिए यहाँ रुके। यहाँ आपके मार्मिक प्रवचन से समाज ने लाभ उठाया। **(४) शिरपुर** - दिनांक १२-११-७८ से १४-११-७८ तक यहाँ मेले का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आपके प्रतिदिन तीनों समय तात्त्विक प्रवचन हुए जिससे समाज में अच्छी प्रभावना हुई। आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बनाये गए। **(५) मालेगाँव** - शिरपुर से लौटते हुए आप एक समय के लिये यहाँ रुके। समाज ने आपके प्रवचन से लाभ उठाया। आत्मधर्म के ग्राहक भी बनाये गये। **(६) परतवाड़ा** - दिनांक १७-११-७८ को दो दिन के लिये आप यहाँ पधारे। आपके सारगर्भित प्रवचनों से समाज लाभान्वित हुआ। आत्मधर्म के अनेक नवीन ग्राहक बनाये गये। **— ब्र० यशपाल जैन**

ब्रह्मचारी बाबूलालजी द्वारा तत्त्वप्रचार

ब्रह्मचारी बाबूलालजी बरायठा ने नैनागिरि सिद्धक्षेत्र, द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र, मेंगवां और शाहगढ़ आदि गाँवों में घूमकर तत्त्वचर्चा, प्रवचन एवं बालकों की कक्षाओं द्वारा तत्त्वज्ञान का प्रचार किया। आपके इस कार्यक्रम से धार्मिक चेतना आई। **— मंत्री, परीक्षाबोर्ड**

श्राविकाश्रम की स्थापना

भोपाल : स्व० सेठ बागमलजी सर्राफ की स्मृति में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सिंगारबाई द्वारा जैन समाज के साधनहीन एवं असहाय वर्ग की सहायतार्थ 'श्री बागमल सिंगारबाई पद्मावती पोरवाल दिगंबर जैन धार्मिक सार्वजनिक न्यास' की स्थापना की गयी है। इसी ट्रस्ट के अंतर्गत दिगंबर जैन श्राविकाश्रम की स्थापना करने का निर्णय लिया गया है। इसमें आवास, भोजन, औषधि एवं धार्मिक शिक्षा की नि:शुल्क व्यवस्था रहेगी।

संपर्कसूत्र : श्री डालचंद जैन सर्राफ, सर्राफा बाजार, चौक, भोपाल (म०प्र०)

जयपुर (राज०) :- ५ नवंबर, १९७८ को महावीर दिगंबर जैन हायर सैकेन्ड्री स्कूल के तत्त्वावधान में वृहद जैन मेले का आयोजन किया गया। मेले में विभिन्न प्रदर्शनियाँ, दुकानें, खेलकूद एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये गये। श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय द्वारा मेले में एक वृहद् प्रदर्शनी लगायी गयी। पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ने विभिन्न प्रदर्शनियों के माध्यम से समाज को अपनी गतिविधियों से अवगत कराया। आत्मधर्म हिन्दी, मराठी, गुजराती, तमिल तथा कन्नड़ के बारे में विस्तृत जानकारी समाज को दी गयी। समाज द्वारा इस आयोजन की सराहना की गयी।

दिल्ली - धर्मप्रवक्ता पंडित बाबूभाई मेहता हस्तिनापुर से लौटते हुए दो दिन के लिये यहाँ रुके। मॉडल बस्ती दिगंबर जैन मंदिर में आपके प्रभावपूर्ण प्रवचन हुए। स्थानीय जैन समाज को धर्मलाभ मिला।

छिंदवाड़ा (म०प्र०) - अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में भगवान महावीर का २५०५वाँ निर्वाण महोत्सव सानंद मनाया गया। इस अवसर पर नगरपालिका भवन में जैनधर्म से संबंधित प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। प्रदर्शन का उद्घाटन श्री पांडेजी, जिला एवं सत्र न्यायाधीश द्वारा किया गया। **— शांतिकुमार जैन सर्राफ, सचिव**

गुना (म०प्र०) - दिनांक ४-११-७८ से १९-११-७८ तक यहाँ तीन लोक मंडल विधान स्थानीय समाज द्वारा सानंद संपन्न हुआ। कार्यविधि पंडित मुन्नालालजी ललितपुरवालों द्वारा संपन्न करायी गयी।

इस अवसर पर प्रवचनार्थ पंडित धन्नालालजी ग्वालियर वाले पधारे। दोनों समय आपके प्रवचनों में स्थानीय समाज ने बड़ी संख्या में भाग लेकर धर्मलाभ लिया। दिनांक

२०-११-७८ को विमानोत्सव संपन्न हुआ। समाज ने बड़े उत्साह से सभी कार्यक्रमों में भाग लिया। —विनोदकुमार जैन

चंदेरी (म०प्र०) - पंडित प्रदीपकुमारजी झांझरी दिनांक २१-११-७८ को विमानोत्सव के अवसर पर यहाँ पधारे। तीन दिन तक उनके मार्मिक हृदयस्पर्शी प्रवचन हुए जिससे युवा वर्ग में नयी चेतना आयी। यहाँ से आप २३-११-७८ को खनियाधाना पधारे। वहाँ भी समाज ने आपके प्रवचनों से लाभ उठाया। विमानोत्सव विभिन्न आयोजनों के साथ सानन्द संपन्न हुआ। — शिखरचंद जैन, पुजारी

मौ (म०प्र०) - दिनांक ६-१०-७८ से २०-१०-७८ तक यहाँ आठवाँ शिक्षण-शिविर आयोजित किया गया। इस अवसर पर पंडित कैलाशचंदजी बुलंदशहर, पंडित देवीलालजी मेहता उदयपुर, ब्रह्मचारी हेमराजजी, ब्रह्मचारी गेंदालालजी एवं ब्रह्मचारी नित्यानंदजी आदि विद्वान पधारे। दो दिवस के लिये पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा भी पधारे। विविध कार्यक्रमों के साथ शिविर सानंद सम्पन्न हुआ। —चक्रेशकुमार जैन

केसली (म०प्र०) - कार्तिक की अष्टाह्निका में स्थानीय जैन समाज की ओर से ब्रह्मचारी बाबूलालजी के तत्त्वावधान में नंदीश्वर विधान का आयोजन किया गया। मोक्षमार्गप्रकाशक एवं पुरुषार्थसिद्ध्युपाय पर प्रतिदिन मार्मिक प्रवचन चले। ब्रह्मचारी आत्मानंदजी एवं स्थानीय विद्वान पंडित कपूरचंदजी के प्रवचनों का लाभ भी समाज को मिला। आत्मधर्म के बारह नवीन ग्राहक बने। —राजेशकुमार सिंघई

उज्जैन (म०प्र०) - अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा के तत्त्वावधान में अष्टाह्निका पर्व पर क्षीरसागर दिगंबर जैन मंदिर में पंडित विमलचंदजी झांझरी के सान्निध्य में अष्ट दिवसीय पंचमेरु नंदीश्वर मंडल पूजन विधान का आयोजन किया गया। इस अवसर पर झांझरीजी के आध्यात्मिक प्रवचन नाटक समयसार एवं मोक्षमार्गप्रकाशक पर होते थे। श्री प्रदीपकुमार झांझरी द्वारा जैन सिद्धांत प्रवेशिका पर कक्षाएँ भी चलायी गयीं।

— सुबोधकुमार सिंघई, प्रचार सचिव

बीना (म०प्र०) - डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल शहडोल जाते हुए दिनांक ४-११-७८ को यहाँ पधारे। भेदविज्ञान पर आपका मार्मिक प्रवचन हुआ। दिनांक ५-११-७८ को विमानोत्सव के अवसर पर पंडित ज्ञानचंदजी, विदिशा का भी विशाल जनसमूह में व्याख्यान हुआ। —बाबूलाल जैन 'मधुर'

उज्जैन (म०प्र०) - दिनांक २२-१०-७८ को स्थानीय भैरवगढ़ जैनमंदिर में श्री प्रकाशचंदजी झांझरी की अध्यक्षता में अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की शाखा का गठन किया गया तथा कार्यकारिणी का सर्वसम्मति से चुनाव हुआ। **— दिनेश वी० शाह, प्रचार सचिव**

अभिमत

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ के नवीनतम प्रकाशन एवं डॉ० हुकमचंद भारिल्ल की कृति 'धर्म के दशलक्षण' पर समीक्षक विद्वानों के महत्त्वपूर्ण अभिमत

*** सिद्धांताचार्य पंडित कैलाशचंद्रजी, अधिष्ठाता, श्री स्याद्वाद संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी**

श्री भारिल्लजी की विचार-सरणि और लेखनशैली दोनों ही हृदयग्राही हैं। जहाँ तक मैं जानता हूँ दशधर्मों पर इतना सुंदर आधुनिक ढंग का विवेचन इससे पहले मेरी दृष्टि में नहीं आया, इससे एक बड़े अभाव की पूर्ति हुई है। दशलक्षण पर्व में प्राय: नवीन प्रवक्ता इस प्रकार की पुस्तक की खोज में रहते थे। ब्रह्मचर्य पर अंतिम लेख मैंने पिछले आत्मधर्म में पढ़ा था, उसमें 'संसार में विषबेल नारी' का अच्छा विश्लेषण किया है। **— कैलाशचंद्र**

*** सिद्धांताचार्य पंडित फूलचंद्रजी, वाराणसी**

जिसप्रकार आगम में द्रव्य के आत्मभूत लक्षण की दृष्टि से उसके दो लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, उनके द्वारा एक ही वस्तु कही गयी है; उसीप्रकार धर्म के आत्मभूतस्वरूप की दृष्टि से आगम में धर्म के दशलक्षण निबद्ध किये गये हैं। उन द्वारा वीतराग-रत्नत्रयधर्मस्वरूप एक ही वस्तु कही गयी है, उनमें अंतर नहीं है।

'धर्म के दशलक्षण' पुस्तक इसी तथ्य को हृदयंगम करने की दृष्टि से लिखी गई है। स्वाध्याय प्रेमियों को इस दृष्टि से इसका स्वाध्याय करना चाहिये। इससे उन्हें धर्म के स्वरूप को समझने में पर्याप्त सहायता मिलेगी। आपके इस सफल प्रयास के लिये आप अभिनंदन के पात्र हैं। वर्तमान काल में दशलक्षण पर्व को पर्यूषण कहने की परिपाटी चल पड़ी है, किंतु यह गलत परंपरा है। पर्व का सही

नाम दशलक्षण पर्व है। हमें देखा-देखी छोड़कर वस्तुस्थिति को समझना चाहिये।

आप अपनी साहित्य सेवा से समाज को इसीप्रकार मार्ग-दर्शन करते रहें।

— फूलचन्द्र शास्त्री

*** स्वस्तिश्री भट्टारक चारुकीर्ति पंडिताचार्य स्वामीजी, एम०ए०, शास्त्री, श्री जैन मठ, मूडविद्री (कर्नाटक)**

समाजमान्य विद्वद्वर्य डॉ० हुकमचंद भारिल्ल द्वारा लिखित 'धर्म के दशलक्षण' देखकर परम हर्ष हुआ। इसमें कोई दो राय नहीं है कि डॉ० भारिल्लजी सिद्धहस्त लेखक हैं और हैं प्रबुद्ध वक्ता।

.....उत्तमक्षमादि दशधर्मों का सूक्ष्म विश्लेषण सरल शैली में व्यक्त किया गया है। इस कर्तृत्व की सर्वोपरि विशिष्टता यह है कि इसमें दशधर्मों का तात्त्विक दृष्टि में सरस, सरल व सुबोधशैली से प्रतिपादन किया गया है। इस दृष्टि से दशधर्मों का विवेचन प्राय: अब तक देखने में नहीं आया है। दशधर्मों पर प्रस्तुत और भी जो कृतियाँ हैं, उनमें भी प्राय: तात्त्विक दृष्टि से विवेचन का पक्ष अगोचर ही रहा है। विद्वान लेखक ने उत्तमक्षमादि प्रत्येक धर्म पर तथ्यात्मक, रोचक व बहुत ही सुंदर ढंग से सफल लेखनी चलाई है। नयनाभिराम मुद्रणादि से संपन्न प्रस्तुत 'धर्म के दशलक्षण' उपहार से पाठकों तथा समाज को सत्पथ का दिग्दर्शन तो होगा ही, साथ ही आत्मा के धर्म को पाने के लिये भी सम्यक् दिशा प्राप्त होगी। **— भट्टारक स्वस्तिश्री चारुकीर्ति पी. स्वामीजी**

*** डॉ० पन्नालालजी जैन साहित्याचार्य, मंत्री, श्री भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्, सागर (म०प्र०)**

आकर्षक आवरण, हृदयहारी साजसज्ज, सरल, सुबोध भाषा और हृदय पर सद्य: प्रभाव करनेवाली वर्णन शैली से पुस्तक का महत्त्व बढ़ गया है। इस सर्वोपयोगी प्रकाशन और लेखन के लिए धन्यवाद। **— पन्नालाल जैन**

*** डॉ० देवेन्द्रकुमारजी जैन, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, इंदौर विश्वविद्यालय, इंदौर**

.....ये लेख आत्मधर्म के संपादकीय में धारावाहिकरूप से प्रकाशित होते रहे हैं, परंतु उनका एक जगह संकलन कर ट्रस्ट ने बढ़िया काम किया। इससे पाठकों को धर्म के विविध लक्षणों का मनन, एकसाथ, एक-दूसरे के तारतम्य में करने का अवसर प्राप्त होगा।

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि लेखों की भाषा इतनी सरल और सुबोध है कि उससे आम आदमी भी तत्त्व की तह में पहुँच सकता है। डॉ० भारिल्ल ने परंपरागत शैली से हटकर धर्म के क्षमादि लक्षणों का सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। इसलिये उसमें धार्मिक नीरसता

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें: —

(१) जिन बंधुओं का सदस्यता-शुल्क फरवरी माह से समाप्त हो रहा है, उन्हें इस माह के आत्मधर्म के साथ मनिआर्डर फार्म भेजे जा रहे हैं। कृपया संबंधित बंधु शीघ्र ही मनिआर्डर फार्म भरकर भेजें ताकि उनको आत्मधर्म बराबर मिलता रहे।

(२) टोडरमल स्मारक भवन में 'श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय' चालू होने के पश्चात् स्थान की कमी महसूस होने लगी है। अत: यात्रा, भ्रमण अथवा व्यक्तिगत कार्य के लिए आनेवाले सज्जन स्मारक भवन का धर्मशाला के रूप में उपयोग करने के लिये पधारने का कष्ट न करें। प्रवचन का लाभ लेने के लिये आनेवाले बंधु भी कृपया पहले से पत्र लिखकर स्वीकृति प्राप्त करें।

❀*❀*❀*❀*❀*❀*

के बजाय सहज मानवी स्पंदन है...। विश्वास है कि यह पुस्तक लोगों को धर्म की अनुभूति की प्रेरणा देगी। **—देवेन्द्रकुमार जैन**

*** डॉ० प्रेमसुमनजी जैन, अध्यक्ष, जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग, उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर**

.....डॉ० भारिल्ल ने बड़ी रोचक शैली में धर्म के स्वरूप को स्पष्ट किया है। आध्यात्मिक रुचिवाले पाठकों के लिये इस पुस्तक में चिंतन-मनन की भरपूर सामग्री है। मेरी ओर से डॉ० भारिल्ल को इस सुंदर एवं सारगर्भित कृति के लिये बधाई प्रेषित करें। **— प्रेमसुमन जैन**

*** डॉ० भागचंद्रजी जैन भास्कर, अध्यक्ष पाली-प्राकृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर**

डॉ० भारिल्ल समाज के जाने-माने विद्वान, व्याख्याता हैं। उनकी व्याख्यान किंवा प्रवचन शैली बड़ी लोकप्रिय हो गयी है। वही शैली इस पुस्तक में आद्योपांत दिखायी देती है। विषय और विवेचन गंभीर होते हुए भी सर्व-साधारण पाठक के लिये ग्राह्य बन गया है। अत: लेखक एवं प्रकाशक दोनों अभिनंदनीय हैं। **—भागचंद्र जैन भास्कर**

बीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से बीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

संतों की ऊर्मि

आत्मा के आनंद में झूलते हुए संतों को ऐसी ऊर्मि उठती है कि—अहो! यदि जगत के जीव आत्मा का ऐसा ज्ञानस्वभाव समझ लें तो उनका अज्ञान दूर हो सकता है। आत्मा के ऐसे आनंद को जगत के जीव देखें तो उनका दु:ख दूर हो जाये।

अहो! ऐसा आनंदस्वरूप भगवान-आत्मा पर से अत्यंत पृथक् है। उसे यदि कोई जीव एक बार भी परमार्थ दृष्टि से ग्रहण कर ले तो उसके अज्ञान का ऐसा नाश हो कि वह ज्ञानघन आत्मा पुन: बंधन में न पड़े-उसकी मुक्ति हो जाए।

इसलिए 'हे भव्य जीवो! आत्मा को पर के कर्तृत्व से रहित ज्ञायकभावरूप से विलसता हुआ देखो!'—ऐसा उपदेश संतों ने परम करुणाबुद्धिपूर्वक दिया है।

— आत्मधर्म, वर्ष १५, अंक १७७, जनवरी १९६०, पृष्ठ ४१४

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में

पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण	साधारण :	४-००
	सजिल्द :	५-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४